विषय सूची

नं०	लेख लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	६३
२.	भगवद्भक्ति [लें० श्री श्यामे भोले बाबा जी	
३.	खोज (कविता) [लें० श्री लक्ष्मी प्रसाद जी "रमा" ...	१००
४.	श्री मेहर बाबा के सदुपदेश	१०३
५.	प्रार्थना	१०४
६.	नट नागर (कविता) [लें० श्री शान्ति स्वरूप वर्म्मा ...	१
७.	आचार्य वर गोस्वामी श्री हित हरि वंश जी [लें० श्री पण्डित गोपाल प्रसाद शर्मा	१०५
८.	संगति [लें० श्री प्रेम पथ पथिक	१०९
९.	प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण [लें० भक्त राज श्री युग प्रसाद जी ...	[illegible]
१०.	धारा तरवार की (कविता) [लें० श्री पं० गंगा विष्णु जी पाण्डेय "विष्णु"	[illegible]
११.	मनोनाश के साधन [लें० श्री महात्मा राम ...	[illegible]
१२.	योग साधन [लें० श्री स्वामी शिवानन्द जी	[illegible]
१३.	किसको (कविता) [लें० श्रीमति बृज कुमारी "प्रकाश" ...	[illegible]
१४.	श्रुतिसार	१२३
१५.	भजन	१२४

REG D.N. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।=)
३. वेदोपनिषद्		-)
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	=)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	"	=)॥
६. भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
७. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
८. सत्य शब्द संग्रह	"	।=)
९. शब्दसंग्रह	"	=)।
१०. सारसंग्रह	"	।)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१२. मनुस्मृति सार	"	≡)।
१३. भक्ति चिन्तामणि	"	।≡)
१४. भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१५. भगवदंक	"	॥।)
१६. गवांक	"	१)
१७. महात्मांक	"	१)

नोट– [illegible] कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पता:–

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक रामानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" में भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

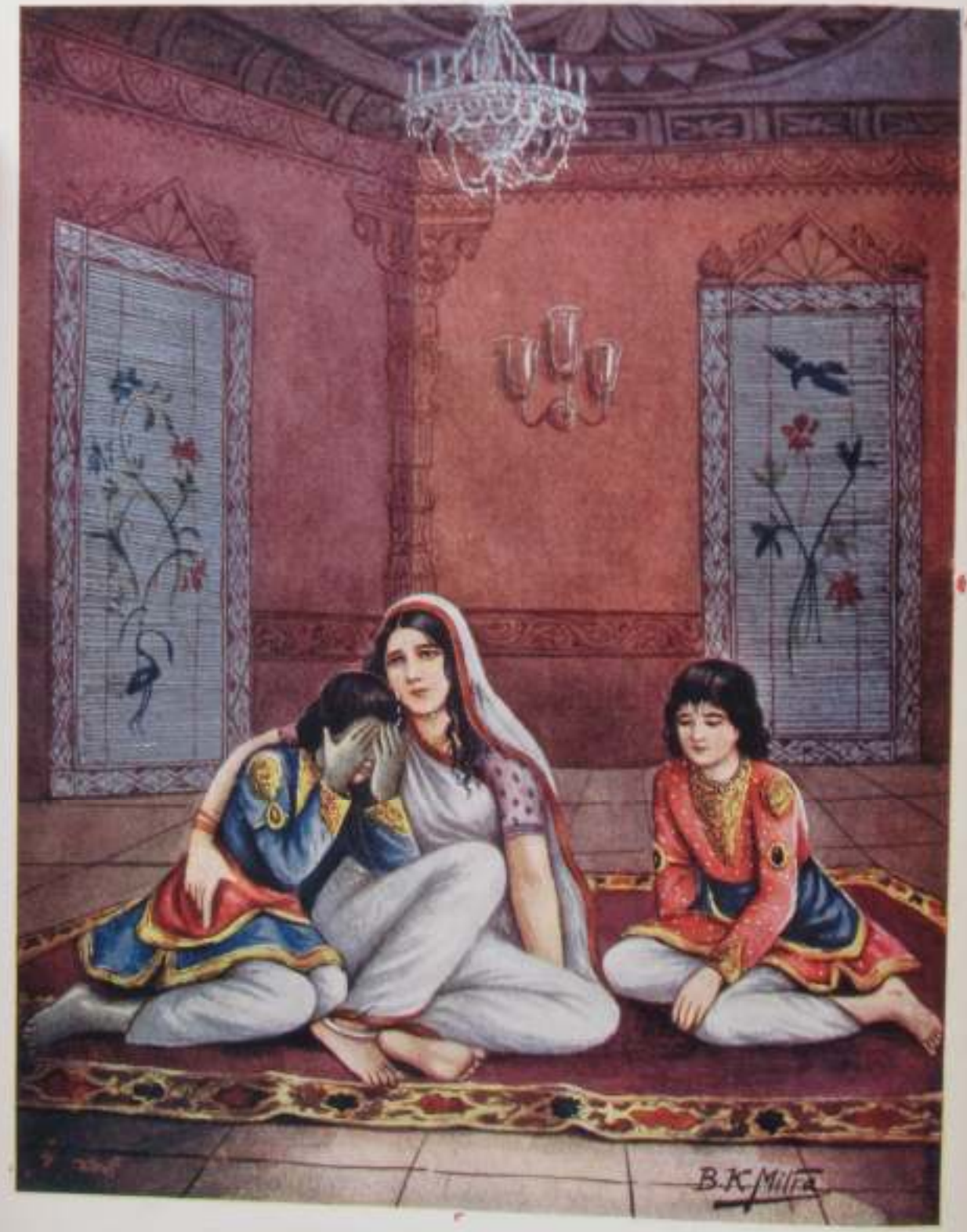

माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पौष पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक ४ पूर्ण संख्या ७६

वेदोपदेश

योममार प्रथमोमर्त्यानां वः प्रेयाय प्रथमो लोकमंतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यम राजानं हविषा उपर्यत ॥ १ ॥

मर्त्यों के बीच में जो पहले मरा और मर कर जो इस लोक में पहले आया, मनुष्यों के संगमन उस वैवस्वत यमराज को हवि से सत्कृत करो ॥ १ ॥

चत्वारि शृंगो त्रयो अस्य पादा द्वेशीर्षे सप्त हस्तासो ।
अस्य त्रिधा बद्धो वृरोमो ऐखीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश ॥ २ ॥

नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात यह चार शृंग है, भूत, भविष्यत, वर्तमान, यह तीन काल ही उस के तीन चरण हैं। नित्य और कार्य यह दो भेद उसके दो शिर हैं। सात विभक्ति ही सात हस्त हैं। हृदय कण्ठ शिर इन तीन प्रदेशों में वह बंधा है। ऐसा हो कर वह मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ है ॥ २ ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३ ॥

सुबन्त तिङन्त भेद से अनेक प्रकार के रूप धारण करने वाले जो तरेसठ वर्ण सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं ईश्वर उनके स्वरूपों का आज मेरे में बल पूर्वक स्थापन करें ॥ ३ ॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहात्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४ ॥

जो परा पश्यन्ति मध्यमा वैखरी स्वरूप हैं। उन चारों को पूर्ण रूप से ब्राह्मण ही जानते हैं औरों के लिये वाणी के तीन भेद गुप्त हैं अन्य वर्ण केवल वैखरी को ही व्यवहार में लाते हैं ॥ ४ ॥

उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ५ ॥

मूर्खजन एक पदार्थ को देखता हुआ भी नहीं देखता है, सुनता हुआ भी नहीं सुनता है, इस लिये वाणी मूर्ख के समक्ष नहीं किन्तु विद्वान् के समक्ष में है, जैसे पति के समक्ष स्त्री अपने समस्त भेद अङ्ग प्रत्यङ्ग रूप से उपस्थित कर देती है ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कथा कुन्ती जी की ।

कुन्ती जी भगवत् की परम भक्त थीं, श्रीकृष्ण महाराज को अपना भतीजा जानती थीं और उनसे ऐसी प्रीति करती थीं कि हर घड़ी भगवत्मूर्ति साक्षात् अथवा ध्यान में आँखों के आगे रखती थीं। दुर्योधन को जीतने के पीछे जब राजा युधिष्ठिर को राज्य प्राप्त हुआ, तो भगवत् ने द्वारका जाने का विचार किया, कुन्ती ने उनको जाने न दिया, पीछे जब भगवान् जाने का विचार करते तो कुन्ती जी व्याकुल और दुःखित होकर कहतीं कि इस राज्य और सुख से तो बनवास ही अच्छा था कि श्रीकृष्ण सदा संग रहा करते थे और भगवत् से कहा करतीं कि हे श्रीकृष्ण ! हम को वह वन और बनवास ही अच्छा है, अब भी वही देना चाहिये कि जिसमें आपके दर्शन होते रहें एक दिन भगवत्

ने जाने का दृढ़ विचार किया और रथ पर सवार हो गये। कुन्ती की उस समय ऐसी दशा होगयी कि उसको देख कर भगवत् को निश्चय हो गया कि यदि अब जाता हूं, तो कुंती जी शरीर त्याग देंगी। यह देख कर भगवत् रथ से उतर आये। अन्त समय में कुन्ती जी ने भगवत् के अन्तर्धान होने के समाचार सुनते ही तुरन्त ही अपने देह को छोड़ दिया और भगवत् धाम में जा पहुंची।

दो०—कुन्ती जी की यदि कथा, हरि में मन न लगाय।
भोगों में आसक्त हो, सो सुख कभी न पाय॥

कथा युधिष्ठिरादि की।

पांचों पांडवों में से अर्जुन की कथा पीछे कहूंगा, राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव की कथा कहता हूं, पाण्डव भगवत् को अपना भाई जानते थे और पूर्णब्रह्म तथा स्वामी भी जानते थे। भगवत् भी उन के उस भाव को अपनी कृपालुता और भक्तवत्सलता से पूर्ण करते थे अर्थात् नित्य प्रभात के समय ऊपर के भाव से युधिष्ठिर और भीमसेन को प्रणाम किया करते थे, क्योंकि ये दोनों वयक्रम से भगवत् से बड़े थे और नकुल और सहदेव जो छोटे थे, भगवत् को प्रणाम किया करते थे। कभी २ भगवत् उनको अपनी ईश्वरता का प्रकाश ऐसा दिखला दिया करते थे कि वह ईश्वरता का भाव भी उनको सर्वदा बना, रहता था। जितनी प्रतिष्ठा भगवत् युधिष्ठिर की करते थे और जितना उनसे संकोच करते थे, उतनी प्रतिष्ठा भीमसेन की नहीं करते थे और उतना संकोच भी नहीं नहीं करते थे किन्तु चारों भाइयों का हंसी ठट्ठा हुआ करता था। विशेष करके भगवान् बहुत भोजन करने पर और स्थूलता और लम्बे डील पर भीमसेन को हंसा करते थे और भीमसेन जी भी जो मन में आता था, वह कहते थे। भगवत् और चारों भाइयों की बोल चाल का वर्णन नहीं हो सका, व्यास जी महाराज ने कुछ थोड़ा सा महाभारत में वर्णन किया है कि उन चरित्रों को सुन कर असंख्य पापी जन्म मरण के दुःख से छूट चुके हैं और छूटेंगे।

युधिष्ठिर महाराज धर्म का अवतार, भीमसेन जी पवन का अवतार और नकुल सहदेव अश्वनीकुमारों का अवतार हैं, जो देवताओं के वैद्य हैं। दुर्योधन की शत्रुता से जो २ संकट पांडवों पर पड़े, उन सब से भगवत् ने उनकी रक्षा की। पहिले तो दुर्योधन ने भीमसेन को विष दिलवाया और हाथ पांव बांध कर नदी में डाल दिया। भगवत् ने यह कृपा की कि वरुण देवता भीमसेन को नदी में से निकाल कर अपने लोक में ले गये। वहां उनको अमृत और दश हजार हाथी का बल मिला। पीछे दुर्योधन ने लक्षागृह में पांडवों को जलाने का उपाय किया परन्तु उनका कुछ न हुआ, उलटा यह उनकी ख्याति का कारण हुआ, अर्थात् हजारों राजाओं की सभा में से वे द्रौपदी को जीत कर ले आये।

एक बार भगवान् ने हस्तिनापुर-दिल्ली में आकर पृथिवी पर जितने राजे हैं, उनसे विजय कराके पांडवों से राजसूय यज्ञ पूर्ण कराया। उस यज्ञ में जब दुर्योधन की हंसी हुई तो उसने जुए में छल से पांडवों का सब धन और सम्पत्ति जीत लिया और द्रौपदी को राज सभा में नग्न करना चाहा, तो भगवत् ने रक्षा की और जब पांडव दुर्योधन से वचन हारने के कारण तेरह वर्ष वन में रहे, तो उन्होंने वहां बहुत से गन्धर्व और राक्षसों को जीता और ऋषीश्वरों से और शिव इत्यादि देवताओं से उनको बहुत लाभ हुआ। दुर्वासा के शाप से भगवान् ने उनको बचाया और महाभारत के

समय में दुर्योधन का ग्यारह अक्षौहिणी दल था और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, सोमदत्त, जयद्रथ और विकर्ण आदि ऐसे २ शूरवीर थे कि सब कोई पांडवों के जीतने का अहंकार रखते थे और दुर्योधन का अंग अष्टधातु के सदृश था और दुःशासन दश हजार हाथियों के बल वाला था और दूसरे अट्ठानवें दुर्योधन के भाई सब बलवान और शूरवीर थे और पांडवों की ओर पांचों भाई पांडव आप और दो चार राजे दूसरे और सात अक्षौहिणी दल था। भगवत् ने उस युद्ध रूपी घोर नदी से आप कैवर्त्तक होकर पांडवों को पार उतारा और सेना और शूरवीरों सहित दुर्योधनादिक का नाश कर दिया। पीछे राजा युधिष्ठिर ने राजसिंहासन पर विराजमान होकर न्याय और धर्म पूर्वक प्रजापालन किया। जब पांडवों ने परमस्नेही भाई अर्थात् भगवत् के अन्तर्धान होने का वृत्तान्त सुना, तो उसी घड़ी, राज्य को छोड़ कर और उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत के निकट बरफाने में जाकर वे परमधाम को चले गये। पांडवों की कथा महाभारत में विख्यात है, इसलिये नाममात्र थोड़ी सी कही है।

कुं–पांडव पांचों धन्य हैं, सखा किये यदुनाथ।
दुष्टों से रक्षा करी, रहे सदा ही साथ॥
रहे सदा ही साथ, विपिन खांडव दिलवाया।
सब राजों को जीत, यज्ञ उत्तम करवाया॥
भोला! भज श्रीकृष्ण, विश्वपति यादव माधव।
उद्धव जिनके भक्त, सखा जिनके थे पांडव॥

कथा द्रौपदी जी की।

परमसती द्रौपदी जी की भक्ति और उनके भाव की महिमा ऐसा कौन है, जो वर्णन कर सके, जिनके मनोरथ को उस भगवत् ने पूर्ण किया, जिसको वेद और ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सके। जब २ द्रौपदी ने भगवान् का स्मरण किया तब २ तुरन्त ही भगवान् आये और अपनी ईश्वरता को छोड़ कर भगवत् ने उनकी चाह को मुख्य जाना। द्रौपदी जी भगवत् श्रीकृष्ण स्वामी को यद्यपि मन में पूर्णब्रह्म परमात्मा मानती थीं परन्तु उनमें देवर का भाव रखतीं। उस भाव में परम रस और अपार आनन्द है। द्रौपदी जी का चरित्र और उनके जन्म का वृत्तान्त पांडवों की कथा के साथ महाभारत और दूसरे पुराणों में विस्तार से लिखा है, यहां भी दो एक कथायें कहता हूं।

जब राजा युधिष्ठिर भाइयों और द्रौपदी सहित संपूर्ण राज्य जुये में दुर्योधन के हाथ हार गये तो दुर्योधन ने पांडवों को बेमर्याद करना विचार कर राजसभा में जहाँ युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी बैठे थे, द्रौपदी को बुलाकर दुःशासन को नग्न करने के लिये आज्ञा दी। भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य आदि इस विचार से कि द्रौपदी जी भगवद्भक्ता हैं, उनके ऊपर दुष्टों की अनीति और दुष्टता नहीं चलेगी अथवा दुर्योधन के भय से मने न कर सके युधिष्ठिरादि धर्म को विचार कर न बोले। द्रौपदी जी उस समय स्त्री धर्म के कारण केवल एक सारी पहिने हुए थीं। जब दुष्ट दुःशासन वस्त्र खींचने को तैयार हुआ तब द्रौपदी जी ने भक्तवत्सल, दीनबन्धु, प्रणतार्ति-भञ्जन, कृपासिंधु अपने देवर का स्मरण किया और लज्जा रखने वाले महाराज जो कि सदा अपने भक्तों के सहाय के लिये समीप ही बने रहते हैं, इसी क्षण आ पहुंचे और द्रौपदी की सारी वामन महाराज के शरीर के सदृश अथवा कुरुक्षेत्र के तुलादान के सदृश अथवा भगवत् अर्पित कर्म के सदृश अथवा नारायण के नाभिनाल के सदृश बढ़ने लगी।

और इतनी बढ़ी कि दुःशासन जो दश हज़ार हाथियों का बल रखता था, खेंचते २ हार गया परन्तु द्रौपदी का एक नख भी नग्न न हुआ। सब दुष्ट लज्जित हुए और उसी समय उन पापियों से राज्य, धर्म, बुद्धि, बड़ाई, आयु और सम्पत्ति आदि विदा मांग कर चल दिये।

दोहा—कहा करै बैरी प्रबल, जो सहाय यदुवीर।
दश सहस्र गज बल घट्यो, घट्यो, न दश गज चीर॥

दुर्जन दुःशासन दुकूल गह्यो, दीनबन्धु,
दीन ह्वै के द्रुपद दुलारी यों पुकारी है।
आपनो सबल छांडि ठाढ़े पति पारथ से,
भीम महाभीम ग्रीवा नीचे कर डारी है।
अम्बर लौं अम्बर पहाड़ कीन्हों, शेष, कवि,
भीषम, करण, द्रोण सभी ही विचारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है,
कि सारी है कि नारी है कि नारि है कि सारी है॥

मंसाराम—महाराज! भगवत् बिना पुकारे आप सहाय करते। द्रौपदी ने धैर्य छोड़ कर भगवत् से सहाय क्यों चाही?

मस्तराम—भाई! इस का एक उत्तर तो प्रेम से भरा यह है कि भगवन् और द्रौपदी में जब हंसी की बातें और छेड़ छाड़ होती थी, तो कभी भगवत् निरुत्तर हो जाया करते थे और कभी द्रौपदी जी। जब यह संकट आन पड़ा, तो द्रौपदी जी ने इसलिये श्रीकृष्ण स्वामी को स्मरण किया कि यदि आप से आप बिना स्मरण और पुकारे भगवत् की सहाय हुई तो मेरा परमस्नेही देवर मेरे व्यंग वचन से सदा निरुत्तर हो जाया करेगा। भाव यह है कि जब भगवान् कहेंगे कि दुःशासन के वस्त्र खींचने के समय की याद करो कि हमने तुम्हारी रक्षा की थी, तो मुझे कहना पड़ेगा कि मैंने क्या तुम्हें बुलाया था, तुम आप ही आये थे, मेरे इस वचन से भगवत् को निरुत्तर होना पड़ेगा और यदि मैं पुकारूंगी, तो वे निरुत्तर न होंगे किन्तु अपने उपकार से संकुचित करके मुझको ही व्यंग वचन बोला करेंगे कि राजसभामें कैसी बीती थी। दूसरा उत्तर यह है कि द्रौपदी जी भगवत् को स्मरण करके उपालंभ देती हैं। ताना मारती हैं कि तुम अपने राज्य और ऐश्वर्य की बड़ाई करके हमको उपालंभ दिया करते थे, अब देखो कि तुम्हारी भावज को दुष्ट लोग किस प्रकार से वस्त्र रहित किया चाहते हैं। तीसरा उत्तर यह है कि द्रौपदी जी भगवत् का स्मरण करके सब भक्तों को शिक्षा देती हैं कि भगवत् के स्मरण करने से जड़ वस्त्र भी अनन्त होजाते हैं, तो जीव उनके स्मरण से अनन्त और अच्युत क्यों न हो जायगा? चौथा उत्तर यह है कि द्रौपदी जी अपने पतियों को धैर्य देती हैं कि भगवत् के स्मरण से कौन सा ऐसा संकट है, जो दूर न होगा?

पश्चात् दुर्योधन ने पांडवों के बारह वर्ष का बनवास और एक वर्ष गुप्त रहने का निश्चय किया। सब पांडव द्रौपदी सहित बन को चल दिये। शास्त्रों के सिवाय खाने पीने की और कुछ सामग्री इनके पास न थी, सूर्यनारायण ने प्रसन्न होकर एक टोकनी देदी थी। उसका चमत्कार यह था कि जब तक द्रौपदी जी भोजन न कर लेती थीं, तब तक सब प्रकार की भोजन की सामग्री इच्छानुसार उस में से निकल आती थी और जब वे भोजन करलेती थीं, तब निकलना बन्द हो जाती थी। एक बार दुर्योधन के कहने से दस हज़ार चेलों समेत दुर्वासा जी ऐसे समय पर आये कि द्रौपदी जी भोजन कर चुकी थी। युधिष्ठिर महाराज ने उनसे भोजन के लिये विनय किया। दुर्वासा जी ने कहा कि स्नान कर आवें, फिर आकर भोजन करेंगे, यह कह कर

स्नान करने को चले गये। राजा युधिष्ठिर ने द्रौपदी जी से कहा कि अभी तुम भोजन न करना, दुर्वासा जी से भोजन करने को कह दिया है, वे स्नान करके आवेंगे। द्रौपदी जी ने विनय कि मैं ने तो भोजन कर लिया। राजा युधिष्ठिर यह वचन सुनते ही अचेत हो गये। और थोड़ी देर में जब चेत आया, तो रोदन करने लगे कि अब किस प्रकार मर्यादा रहेगी और दुर्वासा के शाप से कैसे बचेंगे? द्रौपदी जी ने जो राजा और भीम, अर्जुन आदि की यह दशा देखी, तो अतिदृढ़ विश्वास और भक्ति से कहने लगीं कि तुम ऐसे दीन और अधीर क्यों होते हो? तुम्हारा परमस्नेही भाई श्रीकृष्ण क्या कहीं दूर है कि इस समय सहाय न करेगा।

यह कर द्रौपदी जी ने श्रीकृष्ण स्वामी का स्मरण किया। भगवत् तुरन्त रुक्मिणी को छोड़ कर द्वारका से बन में आ पहुंचे, मानों वहां ही थे, सब से मिल कर द्रौपदी जी से कहने लगे कि भूख लगी है, कुछ भोजन को लाओ। द्रौपदी जी ने कहा कि यहाँ पहिले से एक के लिये ही सब शोच में पड़े हुए हैं, यह दूसरे नये भूखे आगये, मेरे घर में खाने पीने को कुछ नहीं है। भगवत् ने कहा कि कुछ थोड़ा सा लाओ। द्रौपदी जी ने कहा कि कुछ नहीं है, बड़ी देर हुई, टोकनी मांज धोकर रख दी है। भगवत् ने युधिष्ठिर की ओर देख कर कहा कि यह पुर्दिये की बेटी भूखे घर की ऐसी भूखी मिल गयी है कि जब हम भोजन मांगते हैं तब बिना नहीं किये कभी नहीं देती। अच्छा वह टोकनी उठा लाओ, हम आप ढूंढ़ लेंगे। द्रौपदी जी टोकनी उठा कर ले आयी और भगवान् के सामने रखकर कहने लगी कि आप ही ढूँढ़ लेंगें, तो ढूंढ़ लो, यहां किस पर निहोरा है। भगवत् को टोकनी में कहीं लगा हुआ एक साग का पत्ता मिल गया, उसको निकाल कर वे द्रौपदी जी को दिखा कर कहने लगे कि देखो, यह क्या है? द्रौपदी जी बहुत हंसी और कहने लगीं कि यह ग्वालिया साग पात का खाने वाला है, वह ही ढूँढ लिया। भगवत् ने उस पत्ते को अपनी हथेली रख कर खा लिया और थोड़ा सा जल पी लिया। उसी क्षण त्रिलोकी तुष्ट और तृप्त हो गयी और दुर्वासा जी की तो यह दशा हुई कि पेट के भरने से उनमें उठने का भी सामर्थ्य न रहा। पेट अफरने का कारण विचारने लगे, तो भगवद्भक्तों का प्रताप अपने मन में समझ कर और राजा अम्बरीष के कारण जो कष्ट उठाया था, उसका स्मरण करके राजा युधिष्ठिर से बिना कहे छुपकर भाग गये। भीमसेन ढूंढ़ आये कहीं पता न लगा। द्रौपदी जी के ऐसे चरित्र अनेक हैं, किसी को क्या सामर्थ्य है कि कह सकें।

कुं०—देवर जिसके कृष्ण जी, और विश्व कर्तार।
महिमा उसके भाग की, को कहि पावे पार॥
को कहि पावे पार, द्रुपद कन्या यश सुन्दर।
कन्याओं के मध्य, जाहि गिनते हैं मुनिवर॥
भोला! भक्तन हेतु, विश्वकर्ता परमेश्वर।
भज अच्युत भी होय, जेठ भ्राता, सुत देवर॥

———

"खोज"

(ले० श्री० लक्ष्मी प्रसाद मिश्री 'रमा')

ढूंढ़ कर तुझे हुआ हैरान,
कहां तू जाय छिपा छविमान॥
शान्ति पूर्वक वंशीवट में,
अरु जमुना के तट में ढूंढ़ा॥
ब्रज वनितों के भी पनघट में,
कृष्ण के शुचि पट में ढूंढ़ा॥

जहां जो मिला न मुझे सुजान,
कहां तू जाय छिपा छविमान ॥ १ ॥
भँवरी बन धूमर सुरभिन में,
ग्वाल बाल के गन में ढूंढ़ा ॥
राधा जी के सुभग सदन में,
गिरि कंदरा विपिन में ढूंढ़ा ॥
कहीं पर पाया नहीं ठिकान,
कहां तू जाय छिपा छविमान ॥ २ ॥
विश्व को मैंने डाला छान,
भूल से भटका फिरा-निदान ॥
हृदय पट खुले हुआ जब ज्ञान,
हमीं में हमें मिला सुखदान ॥
दिव्य यह 'लक्ष्मी' तव स्थान,
जहां तू बैठा था छविमान ॥ ३ ॥

———

श्री मेहेर बाबा के सदुपदेश।

"जब किसी प्राणी के प्रति तुम्हारे मन में घृणा या द्वेष उत्पन्न हो उस समय उसे अपना ही स्वरूप समझने की कोशिश करो। रोग का प्रतिकार प्रतिषेधक औषध से ही हो सकता है। घृणा या द्वेष रूपी रोगकी प्रतिषेधक औषधि प्रेम ही है। अपने प्रति घृणा करने वाले को घृणा करने से तुम उसके घृणा के भाव की भी वृद्धि करते हो और अपने आपको भी विषाक्त बनाते हो। 'विषस्य विषमौषधम्' यह बात ठीक है परन्तु ये दोनों विष एक प्रकार के नहीं होते।" (अर्थात् एक विष पर प्रतिक्रिया करने वाले विष दूसरी जाति का होता है, उसी जाति का नहीं, इसी प्रकार घृणा का प्रतिकार प्रेम से होता है घृणासे नहीं।)

"विपत्ति के समय हताश और भयभीत मत होओ। ईश्वर को धन्यवाद दो कि जिसने तुम्हें इन विपत्तियों के द्वारा सहिष्णुता और धैर्य हासिल करने का अवसर दिया है। विपत्तियों को सहन करने की शक्ति वाला पुरुष ही आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश कर सकता है।"

"किसी व्यक्ति को किसी भी प्रकार की सहायता या दान देते समय यह मत समझो कि तुम उसके उपकारी हो। बल्कि विश्वास रखो कि तुम्हारे उपकार को ग्रहण करने वाला व्यक्ति तुम्हें ऐसे कार्यों के द्वारा अपनी निजकी भलाई करने का अवसर देता है।"

"बुद्धिवाद के झगड़ों से तुम ईश्वर के निकट पहुंचने की अपेक्षा दूर ही रहोगे। हृदय से निकली हुई निरन्तर प्रार्थना अंधकार के पड़दे को दूर कर देगी।"

"वर्तमान सभ्यता से आवश्यकतानुसार काम लेते रहो लेकिन उसको अपने उपर अधिकार मत जमाने दो। न तो इससे घृणा करो और न उसके वशीभूत हो।

"जिस प्रकार एक वृक्ष की योग्यता का निर्णय उसके परिमाण से नहीं बल्कि उसके फलों के गुणों से होता है उसी प्रकार मनुष्य की योग्यता का निर्णय भी उसकी बुद्धि से नहीं बल्कि वह अपनी बुद्धि का कैसा उपयोग करता है इस बात से होता है।"

"ईर्षा प्रेम से या प्रेम के साथ उत्पन्न नहीं होती बल्कि विचारों की संकीर्णता से होती है विचारों की संकीर्णता के साथ ही इसका नाश हो जाता है।"

"अपने कुकर्मों के लिये परिस्थिति को दोषी बना कर बहाना ढूंढने की चेष्टा न करो। कुकर्मों

के लिए पश्चात्ताप किये बिना तुम कभी उन्नति शील नहीं हो सकते। दोषों का समर्थन करना अपने विवेक का गला घोंटने और पाप को पुण्य बनाने के बराबर है।"

"जब से दलित जाति का जन्म हुआ तभी से भारतवर्ष भी दलित हो गया। दलित जाति के उत्थान होने पर ही भारतवर्ष दुनियां में सब से बड़ा देश नहीं तो दुनियां के बड़े देशों में से एक हो सकता है।"

"लाखों मनुष्य कहते हैं कि ईश्वर के सिवाय और कुछ नहीं है परन्तु वास्तव में उनके लिए ईश्वर के सिवाय सब कुछ है।"

"ध्यान के लिये किसी विशेष आसन की पाबन्दी अनावश्यक है। जिसके लिये जो आसन अनुकूल हो उसको वही ग्रहण करना चाहिए लेकिन एक बार कोई भी आसन ग्रहण कर लेने पर सदा उसी आसन से बैठने के लिये नियम बद्ध रहना चाहिए।"

"तुम्हारे भीतर लोक, ग्रहादि सम्पूर्ण सृष्टि यहां तक कि परमात्मा भी वर्तमान हैं परन्तु तुम्हें इस बात का पता नहीं है। अपने अन्तर स्थित उन सब चीजों को तुम देख नहीं सकते क्योंकि तुम्हारी दृष्टि अन्तर्मुखी नहीं है।"

"अन्तर्दृष्टि और यथार्थ दृष्टि में बड़ा भेद है। अन्तर्दृष्टि का अर्थ सूक्ष्म जगत को देखना है और दृष्टि का अर्थ ईश्वर को सब में व्याप्त देखना है। चर्म चक्षु से स्थूल वस्तु देखी जाती है और सूक्ष्म या अन्तर्मुखी से जगत और लोक देखे जाते हैं तथा आध्यात्मिक चक्षुओं से ईश्वर का दर्शन होता है।"

"संसार परित्याग करना लौकिक दृष्टि से कायरपना सा लगता है परन्तु आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिये बड़े भारी वीरत्व की आवश्यकता है।

प्रार्थना

दयासिंधो! एक बून्द दया का दान देही दोगे तो उसमें तुम्हारा क्या घट जायगा? भगवन्! दानी दान देने में पात्र अपात्र का विचार नहीं किया करते। पात्र को दान देने वाले तो और भी मिल जायेंगे। उदारता तो पात्र अपात्र का विचार किये बिना ही दान देने में है।

दीनबन्धो! एक बार इस दीन की ओर निहारलो। बस मैं इसमें ही सनाथ हो जाऊंगा। नाथ! और किसी बात की इच्छा नहीं है केवल एक बार अपनी तिरछी चितवन से निहार कर इसे कृतार्थ करदो।

करुणामय! करुणा करना तो तुम्हारा स्वभाव है। फिर मैं उस करुणा से क्यों वंचित हो रहा हूं। स्वामिन्! क्या थोड़ी सी करुणा के खरच से तुम्हारे खज़ाने में टोटा आजायगा?

पतित-पावन! पतितों को पावन नहीं करोगे तो तुम्हारी यह पदवी छीन ली जायगी। क्या मैं पतित नहीं हूं? स्वामी! फिर मुझे पावन करने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा है? मैं अपने आपको पतित नहीं समझता क्या? इसी लिए इसमें देरी हो रही है? तब तो प्रभो! मैं और भी ज्यादा इस कृपा का पात्र हूं। क्योंकि पतित होकर अपने को पतित न समझे उससे बढ़कर पतित और कौन होगा?

अपराधी अपने अपराध को स्वीकार न करे तो उसका अपराध और भी गुरुतर माना जाता है।

अधमोद्धारण ! इस अधम के उद्धार में विलम्ब क्यों रहा है ? मेरी अधमता में अब कौनसी कसर रह गई है। जिसने गर्भ में रक्षा की, जिसने पालन पोषण किया, जिसने सुर दुर्लभ मनुज देह प्रदान की उसे बिसार कर नित्य विषयों का सेवन करता हूं। अगर अब भी मेरी अधमता में कमी मानते हो तो यही कहना होगा स्वामी ! तुम पर भी कलिकी छाया पड़गई जो न्याय से हटने लगे।

मन मोहन ! कैसे विश्वास करूं कि तेरा मन मोहन नाम उपयुक्त है ? अरे अभी तक तू मेरा मन तो मोह ही नहीं सका। एक बार अपनी त्रिभुवन मोहिनी छवि को दिखा कर देख तो सही मेरा मन उस पर मोहित होता है या नहीं। अच्छा आज यही बाजी लगाले। यदि तू मुझे मोहित कर सका तो अपना गुलाम बना लेना नहीं तो आज से मन मोहन कहाना छोड़ कर नित्य मेरी आँखों के सामने खड़ा रहा करना।

मुरली मनोहर ! एक बार अपनी उस मुरली की मधुर तान सुना कर ही इस मन को हरले। मैं भी देखूँ कैसी उस मुरली की मधुर ध्वनि है जिसने सारे ब्रज के मन को हर लिया और मेरा मन नहीं हर रही है। अरे नटवर ! एक बार मुझे भी अपनी मुरली बजा कर दिखा तो सही।

मायापते ! तेरी इस माया ने मुझे खूब नाच नचाया। अब तो मैं नाचता नाचता थक गया हूं फिर भी यह विश्राम नहीं लेने देती। एक बार अपनी इस चेरी को समझा क्यों नहीं देता कि थोड़ी देर तो मुझे छोड़ दे जिससे तेरे सर्वतापहारी मधुर मुसकान युक्त मुखड़े को देख कर मैं अपनी थकान मिटालूं।

असुरारि ! तेरे निवास स्थान मेरे हृदय मंदिर में काम क्रोध रूपी असुरों ने अड्डा जमालिया है इसका अभी से नाश कर दो। नहीं तो इनकी प्रजा बढ़ने पर इनका नाश करने में बड़ी दिक्कत होगी। लोग कहेंगे कि यह कैसा सर्वशक्तिमान् है जो अपने घर की रक्षा भी नहीं कर सकता।

प्रणतपाल ! मुझे भी अपनी शरण में रख लो। इधर उधर धक्के खाते अनेक जन्म बीत गये अब तो सुध लो प्रभो ! अधिक नहीं तो अपने दासों की चरण सेवा में ही नियुक्त करदो। सच कहता हूं मैं उसी में सन्तोष मान लूँगा। और नाता न सही दासानुदास तो बनालो।

नट नागर

(ले० श्री० शान्ति स्वरूप वर्मा)

किसने बनाया जग पालन करे है कौन,
विश्व को नचाता कौन ऐसा बाजीगर है।
सागर सुमेर सब किसने बनाये कैस,
फूल भर देत रंग कौन कारीगर है।
कौन अंशु माली में है ताप भर देता नित,
चन्द्रमा में कौन करे अमर मगर है।
उसी नट नागर की खोज में चलो रे भाई,
बसे किस ग्राम और कौन सी डगर है।

आचार्य्यवर गोस्वामी श्री हित हरिवंशजी।

(ले० श्री० पं० गोपाल प्रसाद शर्मा)

संसार में नास्तिकों को छोड़ कर यदि आस्तिकों की ओर देखिये तो उनमें प्रायः विशेष करके भगवान् के ऐश्वर्य्य उपासकही होते हैं क्यों कि संसार कामनामय है। वैभव-आश्चर्य और सिद्धि ये तीनों ऐश्वर्य्य के ऐसे अंग हैं कि जिनके आश्रय होकर मनुष्य आसक्त हो जाता है और भगवान् की भक्ति और भक्तों में उसकी निष्ठा हो जाती है।

संसार में समय २ पर जो महात्मा और आचार्य्य हुए हैं उन्होंने मनुष्यों को इन्हीं वैभव आश्चर्य और सिद्धि से आकर्षण करके भक्ति की ओर झुकाया था। उन महात्माओं आचार्य्यों के चरित्र प्राचीन भक्तमाल-नई भक्तमाल संवदाई पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं में लिखे गये हैं तथा लिखे जाते हैं।

किन्तु विज्ञान (जड़ नहीं चैतन्य आस्तिक) अनुभव जनित प्रेम लक्षणा भक्ति एक ऐसी उच्च कोटिकी दशा है कि उसकी प्राप्ति करने वाले बहुत ही कम पुरुष इस कामनामय संसार में हुये हैं और हैं। उन महानुभावों के चरित्र विलक्षण होते हैं। वे कामनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं रखते और न वैभव आश्चर्य्य और सिद्धि की ओर आंख उठा कर ही देखते हैं। उनका ध्येय तो सदा यही रहता है।

> दुख सुख भुगतै देह नहीं कुछ शंक है।
> निंदा अस्तुति करो राउ क्या रंक है॥
> परमारथ व्यौहार बनो की ना बनो।
> अंजनहूं मम नैन रसिक भगवतसनो॥ १॥

उपरोक्त यह मार्ग कठिन भी है सुलभ भी है। मनुष्य जब मनुष्य बन जाता है तभी उसको यह मार्ग सूझता है। जीव योनि से उत्पन्न होता है इसलिये उसकी संज्ञाजन है। जिन जनों को जीवन मरण का ज्ञान होने पर भगवान् का लक्ष हो जाता है वे जीव कहाते हैं। जो जीव मनन (विचार) करके भगवत् कृपा का आश्रय या अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति में आरूढ़ होता है वह मनुष्य कहाता है क्योंकि मनुष्य शब्द का अर्थ ही है मनन करना। इसीसे किसी महात्माने कहा है कि संसार में बारह आने सृष्टि प्रवाह में बहते हुए जन हैं दो आने जीव हैं केवल दो आने मनुष्य हैं।

अब हम आगे एक ऐसे ही महानुभाव का चरित्र वर्णन करेंगे कि जो मनुष्यों के उपदेशक थे विज्ञानमय सौंदर्य और प्रेम लक्षणा भक्ति के उपासक थे। निष्काम उनका धर्म्म था। अन्य भजा-रिणि उत्कट अनन्य भक्ति उनका ध्येय था। इस बात की साक्षी आदि भक्तमाल के कर्ता श्रीनाभा जी अपने पंचायती फैसला भक्तमाल में यों देते हैं कि:-

> छप्पै-श्रीराधा चरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
> कुंज केलि दंपती सहाँ की करत खवासी॥
> सर्वसु महा प्रसाद सिद्ध ताके अधिकारी।
> विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रत धारी॥
> श्री व्यास सुवन पथ अनुसरे, सोई भले पहिचने है।
> श्रीहित हरिवंश गुसांई की रीति सुकृत कोउ जानि है॥

गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी के पिता श्री व्यास जी गौड़ वंशोद्भव हुमायूँ बादशाह के समय

में गाउर ज्योतिषी थे और श्रीहित जी की माता का नाम तारा रानी था। संसार में श्रीव्यास जी के यहाँ धन जन की कोई कमी नहीं थी सब सुख भगवान् ने उनको दिया था केवल दुःख था तो यही था कि संतान नहीं थी।

श्री व्यास जी के छोटे भाई श्री नृसिंहाश्रम जी विरक्त महात्मा थे। गिरि गुहा में रह कर वे सदा भगवान् का मानसी ध्यान किया करते थे। किन्तु शुष्क काष्ट की न्याई तामसी विरक्त नहीं थे। उन्हें भगवान् और उनकी अलौकिक सृष्टि से प्यार था। श्रीहित धर्म जल में डूब कर सूखे निकल आने की शिक्षा देता है। जल तैलवत् जो संसार में रहता है वही पक्का शूर है। यही रहनी श्री नृसिंहाश्रम जी की थी। इसी से वे कभी २ घर आकर अपने भाई और भौजाई को स्नेह कर आनन्द भी प्राप्त करते थे। एक दिन घर आने पर व्यास जी ने उनसे कहा—"भैया! हमारी अवस्था ढल चुकी है। आप विरक्त होगये हैं संतान न होने से अब इस घर की क्या दशा होगी!" यह सुन नृसिंहाश्रम जी ने कहा 'भैया! आप तो स्वयं ज्योतिषी हो सब जानते हो भाग्य को कौन मिटा सका है।" व्यास जी तो यह उचित उत्तर सुन चुप हो गये किन्तु भौजाई तारा रानी से न रहा गया वे कहने लगीं—"लाला! भाग्य तो उनके लिये है जिनके तुम ऐसे सिद्ध देवर नहीं हैं।" सुनते हैं—"करम की रेख पै करतार मेख मारै" सो जो शक्ति भगवान् में है वही उनके भक्तों में है। तब फिर क्यों हमें भाग्य के चक्कर में डालते हो अब तो इस सूने घर में तुम्हें उजाला करना ही पड़ेगा। भौजाई के ऐसे प्रेममय वाक्य सुन कर सिद्ध जी गद्गद् हो गये और फिर भाई भौजाई की वन्दना करके बन को चले गये।

दूसरे दिन घर आकर सिद्ध जी ने अपने भाई भौजाई से कहा कि—"मुझे मानसी ध्यान में प्रभु की आज्ञा हुई है कि तुम्हारे यहाँ श्रीहित नागर की त्रैलोक्य मोहनी वंशी का और साक्षात हित का अवतार प्रगट होगा।" बस! उसी दिन भगवत् कृपा से श्रीताराराानी को गर्भस्थिति होगई।

सिद्ध जी उस दिन से बारंबार घर आने लगे। एक दिन भौजाई उनको आदर देने के लिये पलंग पर से उठने लगीं किन्तु सिद्ध जी ने उन्हें नहीं उठने दिया और कहा कि—"तुम्हारे उदर में मेरे प्रभु का निवास है। भौजी? अब उस लौकिक व्यवहार को जाने दीजिये।" फिर तीन परिक्रमा पलंग की करके शीस नवा बन को चले गये।

श्री व्यास जी का निवास स्थान देव बन जिला सहारन पुर था। किन्तु वे प्रायः दौरा किया करते थे। जो विभूति उनके यहां प्रकट होने वाली थी उनका सम्बन्ध श्रीवृजधाम से था इसलिये जब श्रीव्यास जी दौरा करते २ मथुरा जिले में आये तो इधर श्रीराधिका जी का जन्म स्थान रावल और उधर श्रीकृष्ण जी का जन्म स्थान गोकुल इन दोनों के बीच श्री बादग्राम में श्री हरिवंश जी का प्रागट्य हुआ। वह शुभ दिन सम्वत् १६३० वैशाख सुदी एका दशी सोमवार था। श्री व्यास जी और तारा रानी को जो आनन्द प्राप्त हुआ था उसे लिखने की शक्ति नहीं किन्तु श्रीहित संप्रदाय के अनन्य श्री सेवक जी ने अपनी सेवक वाणी में जो बड़े विस्तार के साथ जन्मोत्सव को वर्णन किया है उसकी अंतिम पंक्तिका यह है कि।

त्रिपदी छन्द

निर्जल सरोवर भये। सबदे वृक्षनि पल्लव नये। अन्न सुकाल चहुंदिशि भये। गये अशुभ सब विश्वके॥ म्लेच्छ सकल हरी जस विस्तरहिं। परम कलितबानी उच्चारहिं।

करहिं प्रजा पालन सबै। अपनी २ रुचि बस दास ॥
जस बरणों हरि बंश विलास। श्रहरिवंशहि गाइयो ॥ १ ॥

श्री हित जी के बाल चरित्र उनके चरित्र ग्रंथों में बहुतायत से वर्णन किये गये हैं किन्तु स्थल संकोच के कारण यहां केवल एक दोही वर्णन कर देना बस होगा।

श्रीनाभा जी ने भक्तमाल में श्रीहित को "श्रीराधा चरण प्रधान" कहा है सो आप जब माता की गोद में अथवा पालने में पौढ़े हुए हंसते थे और कोई "श्रीराधे" टेर लगाता था तो गद्गद हो जाते थे और किलकारी देके हंस पड़ते थे। श्रीराधासुधानिधि संस्कृत का अनूपम ग्रन्थ आपके बालकपन में कहे हुए श्लोक का ही संग्रह है। जिसके विषय में करुणानन्द काव्य के कर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्र जी कहते हैं कि–

श्लोक–यन्न प्रदर्शितं नाम श्रीमद्भागवते क्वचित्।
स वैयासकि रूपेण दर्शितं तत्सुधानिधौ ॥ १ ॥

अर्थात्–व्यास जी के पुत्र ने जो श्रीराधा नाम भागवत में कहीं भी स्पष्ट नहीं कहा है वही अब व्यास जी के पुत्र ने सुधानिधि के पंक्ति २ में वर्णन किया है।

फिर श्रीनाभा जी ने भक्तमाल में श्रीहित जी को "अनन्य उत्कट वृतधारी" की पदवी दी है सो इसी एक विषय से आपकी अनन्य उत्कटता का परिचय मिलता है कि एक समय श्रीहित जी के शरीर में कोई वेदना होगई थी। श्री व्यासजी स्वयं तो ज्योतिषी थे ही। किन्तु विद्वानों का मान बढ़ाने के लिये और ज्योतिषियों को भी बुला के उनसे पुत्र की वेदना का कारण पूछा। उन्होंने प्रचलित प्रथानुसार ज्योतिष के आधार पर ग्रहादिक का अरिष्ट बताया पर श्रीहित जी तो अनन्य उत्कट वृतधारी थे सातवर्ष की अवस्था में ही वे ज्योतिषियों से कहने लगे कि–

सवैया

द्वादश चन्द्र कुलस्थल मंगल बुद्ध विशुद्ध सुर गुरु बंक।
यद्यपि दशम भवन भृगुसुत मन्द सुकेतु जन्म के अंक ॥
अष्टम राहु चतुर्थ दिनमणि तो हरिवंश करत न शंक।
जो पै कृष्ण चरण अर्पित तन मन करतहिं कहा नवग्रह रंक ॥
भानु दशम्म जनम्म निशापति मंगल बुद्ध शुभस्थल जोके।
जो गुरु होंय धरम्म् भवन केतु भृगुनन्द सुमदं नवीके ॥
तीसरो केतु सुमंद विधुप्रसुती हरि वंश मनक्रम फीके।
जो पै छाँडि गोविंद भ्रमतद्शों दिशि क्यहिं कहा नवग्रह नीके ॥

आहा! कितनी अनन्य उत्कट वृत की धारणा भगवदीयजन ध्यान से इस पर विचार करें।

श्रीहित जी का बाल कैशोर और कुछ यौवन काल अपने निवास स्थान देववान जिला सहारनपुर ही में व्यतीत हुआ। यहीं आप का विवाह हुआ एक पुत्र हुआ, अनेक शिष्य हुए और श्रीव्यास जी परमधाम को सिधारे। बादशाह ने पिताकी वृत्ति देने के लिये इन्हें अपने दरबार में बुलाया पर आपने यह कह कर उसे स्वीकार नहीं किया कि–

एवं नरेन्द्र दिविजेन्द्र सुरेन्द्र मुख्या,
नागेन्द्र शंभु द्विजेन्द्र दिनेन्द्र तुल्या।
सर्वे समान वयसा किल काल ग्रस्ता–
स्तस्माद्भजस्व हरिपाद सरोज गंधम् ॥ १ ॥

चौपाई

कुंवर कही तब मधुर बानी ॥
काल ग्रासित सब विश्व बखानी ॥
तीन लोक को निग्रह जानी ॥
नृप संपति की कौन कहानी ॥ १ ॥

रसिक माल

महानुभावों का प्रादुर्भाव जगत के कल्याणार्थ ही होता है। अब देव बन में श्रीहित धर्म का

पश्चात् अच्छे प्रकार हो गया तो मानसी ध्यान में प्रभु की आज्ञा पाकर स्त्री, पुत्र और शिष्य वर्ग की सम्मत्ति लेकर श्रीहित जी अपने इष्ट धाम श्रीवृन्दावन को चल दिये।

गृह से आप उठ चले तो मार्ग में एक चिड़थावल गाम मिला। जहाँ बहुत पुराने समय की एक भगवत मूर्ति एक ब्राह्मण के यहां थी उस भगवत् मूर्ति ने ब्राह्मण को स्वप्न दिया कि मेरे सजातीय एक महापुरुष अमुक स्थान पर यहीं ठहरे हुए हैं सो तू अपनी कन्या का विवाह उनके साथ करदे और हमें दायजे में देदे यदि ऐसा न करेगा तो तेरा मंगल न होगा। उधर श्रीहित जी को भी मानसी ध्यान में प्रभु ने यही आज्ञा दी। इससे विवश श्रीहित जी को आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी क्योंकि उनका जीवन तो इसी पर निरभर था कि:-

जो भावै सोई करो, मेरो कछु न कहाव॥
जंत्री के कर जंत्र है, ज्यों भावैत्यों बजाव॥

जिस समय श्रीहित जी अपनी पत्नी और श्रीठाकुर जी को साथ में लेकर श्रीवृन्दावन आये थे उस समय आज कल की न्याँई ईंट पत्थरों से भरा हुआ श्रीवृन्दावन नहीं था उस समय तो श्रीवृन्दावन शांति निकेतन था। लिखा है कि:-

राजत श्रीयमुना तट सुन्दर बोलत मोर भले बन मांहीं।
झूल रही फल फूलन सों तरु बेलि सबै जल में परसांहीं॥
हंस कपोतन की गुटकी धुनि कोकिल की रव है जो सुहाहीं।
नाना तरंगनि सों बन शोभित मोहत देख छबीली छटांहीं॥

ऐसे प्रकृति की शोभा के भंडार श्रीवृन्दावन में शांति दाता महानुभाव श्रीहित जी का आगमन सुनके वृज के लोग झुंड के झुंड दर्शन को आने लगे। उस समय वृज की राजधानी भैंगाँव थी। के राजा नरवाहन थे। वे भी श्रीहित जी के दर्शन को आये। यदि आज कल के आचार्य और महन्त होते तो राजा के आगमन पर केवल प्रशंसा के और कुछ नहीं कहते किन्तु श्रीहित जी तो निस्पृही सदुपदेशक थे इसलिये उस समय की जो राजनीति थी धींगाँ धींगी और सबलों का निर्बलों पर अत्याचार सो उसको लक्ष करके आपने नर वाहन से कहा कि:-

तें भाजन कृत जटित विमल चंदन कृत ईंधन।
अमृत पूरि तिहिं मध्य करत सरपप खल रिंधन॥
अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत।
बार करतजु पै वार मन्द वो बन विष चाहत॥
जय श्री हित हरि वंश विचारिके मनजु देहु गुरुचरन भजि।
सकहि तो सब परपंच तजि कृष्ण कृष्ण गोविंद कहि॥

अब विचारने का स्थान है कि इस आत्म बल के छोटे से उपदेश में ऐसी कौनसी शक्ति थी कि जिसने नरवाहन ने उचित कर लगा के प्रजा पीड़न करना छोड़ दिया था।

श्रीहित जी त्याग और तपस्या की साक्षात मूर्ति थे। नरवाहन जयमल-भुजन चौहान आदि भक्तमाल में गाये गये राजा और श्रीमान शिष्य होते हुए भी श्रीहित जी ने संग्रह अणुमात्र भी नहीं किया था। ठाकुर सेवा के लिये जब कोई शिष्य वृत्ति लगाने की प्रार्थना करता था तो आप यही उत्तर देते थे कि–"अरे भइया ? जो विश्वंभर है उसे तुम क्या दोगे ? उसीका दिया तो तुम पा रहे हैं।" यह सुन लोग चुप हो जाते थे। केवल नरवाहन की इतनी सेवा आपने अंगीकार की थी कि नित्य सेवा के लिये वस्तु आना और दूसरे दिन को अवशेष न रह कर उसी दिन व्यय हो जाता।

आज कल कलिका संसार वैभव का उपासक है जिन महानुभावों ने तन मन धन "श्रीकृष्णार्पणम्" करके माता लक्ष्मी को अपनाया है वहाँ ठट्ठ के ठट्ठ लोग जाते हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? किन्तु निस्पृह श्रीहित जी के रसिक शिरोमणि श्रृंगार: सार मूर्तिमान नित्य श्री-श्री राधावल्लभ जी तो केवल अपनी छवि निधि से ही भावकों के चित्त को आकर्षण किया करते हैं।

श्रीहित जी ने कोई शास्त्रार्थ नहीं किया और न प्रस्थान त्रयी पर टीका ही की है। आप का तो सिद्धांत था—"कुत्सित बाद विवाद सुन शिव मन्द परतीय चंचु" आप ऐश्वर्य के नहीं माधुर्य के आचार्य्य थे इसीलिये संस्कृत में श्रीमद्राधा सुधानिधि यमुनाष्टक और व्रज भाषा में श्रीमत चतुरासी जी तथा स्फुट पद ये तीन ग्रन्थ और एक अष्टक प्राप्त होते हैं इन वचनों में क्या अद्भुत शक्ति है सो इसी एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायगा कि—

व्यास जी उरछा के राजगुरु दिग्विजई पंडित थे। संस्कार उदय होने पर वे एक समय श्रीवृन्दावन जाकर श्रीहित जी के दर्शन को गये आज कल के आचार्य्य और महंतों की न्याईं पुजारी के हाथों में ठाकुर को सौंप कर श्रीहित जी गद्दी पर बैठे मौज नहीं उड़ाते थे। वे प्रभु की सेवा राजगुरु होते हुए भी अपने हाथ से ही करते थे। जिस समय व्यास जी पहुँचे उस समय आप रसोई भंडार में थे। व्यास जी का शब्द कान में पड़ते ही आपने दाल की टोकनी चूल्हे पर से उतार के नीचे धर दी और आकर कहा—"कहो भइया? कहा काम है" व्यास जी तो शास्त्रार्थी थे तुरंत तर्क की कि "महाराज! दाल चूल्हे पर सिद्ध होती आप मुझ से वार्तालाप करते। यह टोकनी आपने क्यों उतार दी।" यह सुन मन्द मुसका के श्रीहित जी ने कहा—

यह तू एक मन बहुत ठौर करि कहि कौनें सचु पायो।
जहाँ तहाँ विपति जार जुवती ज्यों प्रगट पिंगला गायो॥
द्वै तुरंग पर जोर चढ़त हठि परत कौन पै धायो।
कहि धौं कौन अंक पै राखै ज्यों गनिका सुत जायो॥
जय श्रीहित हरिवंश प्रपंच बंच सब काल व्याल को खायो।
यह जिय जान श्यामश्यामापद कमल संगी सिर नायो॥

आज हम सैंकड़ों व्याख्यान और कथा सुनते हैं पर वह स्मशान ज्ञान ही होता है। यह दोष कहने वाले का है अथवा सुनने वाले का। सो प्रभु ही जानें किन्तु श्रीहित जी के इस छोटे से उपदेश में कौनसी वह शक्ति थी कि राज्य गुरु दिग्विजयी महान पण्डित के विद्याभिमान को चूर करके उनके हृदय को भगवत् की ओर लगा दिया। व्यास जी उसी समय सब पोथी पत्रा जमना में प्रवाह करके श्रीवृन्दावन निवास करके यह गाने लगे कि—

नमो नमो जय श्री हरिवंश।
रसिक अनन्य वेनु कुल मंडन लीला मान सरोवर हंस॥
नमो जयति वृंदावन माधुरी रास विलास प्रशंस॥
आगम निगम अगोचर राधे चरणसरोज व्यास अवतंस॥

श्रीहित जी ने श्रीवृन्दावन में निवास करके कितने जीवों को कैसा उपदेश देकर शान्ति प्रदान की थी इसका विवरण भक्तमाल और उनके संप्रदाई ग्रंथों में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। हम ऐसे तुच्छ जीवों को तो श्रीहित जी केवल यही उपदेश दे गये हैं कि—

सब सों हित निष्काम मति श्रीवृन्दावन धाम।
श्री राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान मुख नाम॥

इस प्रकार उपदेश देकर जीवों का कल्याण करके वंशी का अवतार होने के कारण आप श्रीहित जी संवत् १६०९ आश्विन शुक्ल पूर्णिमा रासोत्सव

के दिन निकुञ्ज धाम पधारे।

श्रीहित धर्म्म के विषय में कविवर रस निधि अपने रतन हजारा में कहते हैं कि–

हित मत की जानो चहो सीलो याके पास।
बढ़ै छुटै न तजै तऊ केशर रंग सुवास ॥ १ ॥

किन्तु–"अनेक जन्म संसिद्धि" इस भगवद्वचनानुसार श्रीहित धर्म्म में प्रवृत्ति बड़ी कठिनता से होती है। चार लक्षपद कथने वाले श्रीवृन्दावन चाचाजी अपने विषय में कहते हैं कि–

तीनों ताप तापी बड़ो पापी में प्रतापी नीको,
दया ते कहून त्यागी हो करैया एक बदी को।
ऐ पै सत्संग पाय नाना संप्रदाय में आय,
फार डारो खातो यमराज के मुसद्दी को।
फिर कैं बैकुंठ हूको खुलो है जमा औ खर्च,
ताहू को उठाय धरयो देर जहां रदी को।
तहां तें जु धायो शीघ्र आयो दौरि वृन्दावन,
राधावर भायो मंत्र पायो हित गदी को।

संगति

(ले० श्री प्रेम पथ पथिक)

संगति कीजे साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगति नीच की, आठों पहर उपाधि ॥

ओहो! इस निरापराध पक्षी को किसने घायल कर दिया। अब इसके बचने की आशा नहीं क्योंकि इसके अन्तिम स्वांस चल रहे हैं। ऐ निर्दयी बहेलिये! भला बताओ तो सही इस बिचारे पक्षी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था। क्या कहा 'अपने पेट के लिये?' पर क्या तुम्हें इसे छोड़ जीविका के लिये दूसरा कोई काम नहीं मिलता? क्या तुमने इसी दुष्कर्म को अपने पेट तथा परिवार पालन का साधन समझ लिया है? भाई जरा चेतो और आंखें खोल देखो तो सही कि तुम कितने भूले हुये हो।

इतने ही में सनत्कुमार उसी मार्ग से उन भूले हुये के उद्धार निमित्त आनिकले और उस व्याधे को निकट बुलाकर पूछा "ऐ अबोध व्याधे! जरा अपनी हाल पर रहम खाओ और अपने इस निर्दयी कार्य को छोड़ दो! यदि तुम इस पर विश्वास न करो तो सीधे अभी घर जाओ और अपने परिवार के लोगों से पूछो भी तो कि इस पाप-कर्म में कौन २ तुम्हारा साथी है।

व्याधे ने समझा कि ये मुझे बहकाया चाहते हैं और मैं इन्हें लूट लूंगा इस डर से पीछा छोड़ाना चाहते हैं। व्याधे ने उत्तर दिया–अय धूर्त पुरुषो! मैं तो दिन रात तुम्हारे जैसे मनुष्यों ही को चराया करता हूं फिर मुझ से इतनी चालाकी! अजी छोड़ो व्यर्थ की बातों को और देदो चुपके अपनी गठरी नहीं तो जान पर आपड़ेगी।" ऋषियों को उसकी हालत पर दया आगई और उन्होंने व्याधे को एक युक्ति बताई जो उसे खूब पसन्द आई। व्याधे ने उन्हें एक वृक्ष में कस कर बांध दिया और चला घर की ओर।

स्त्री ने खाली हाथ देख उसे खूब फटकारा। व्याधा चुप रहा और फिर थोड़ी देर बाद पूछा–'हे सुभगे जरा यह तो बताओ कि मैं जो द्रव्य लूट पाट मार खसोट कर लाता हूं उसके पाप का भागी तुम हो न?' स्त्री ने झुंझला कर उत्तर दिया 'नहीं, त्रिकाल में भी नहीं। मैं क्या जानूं तुम कहां से और कैसे लाते हो। यह तो तुम्हारा कर्तव्य है और केवल तुम्हीं इसके हानि-लाभ और जीवन मरण के भागी हो।

'कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा॥'

व्याधे ने अपने पुत्र, पौत्र, पुत्री, मित्र और भाई से भी यही प्रश्न किया और उन सबों से भी ऐसा ही नीरस उत्तर मिला। बस फिर क्या था ऋषियों के पास हक्का बक्का पहुंचा और उनसे सभी बातें कहीं। सप्त ऋषियों में नारद जी ने उसे ज्ञान का उपदेश दिया और वही व्याधा राम राम को उलटा अर्थात् मरा मरा जपते वाल्मीकि ऋषि हो गये जिन्होंने जगत पावनी रामायण ग्रन्थ की रचना की।

प्यारे पाठको! देखा आपने विचित्र परिवर्तन। इसी को कहते हैं सत्संगति। वर्षों की बुरी आदत घण्टों ही में सप्त ऋषियों की दया से छूट गई।

संगति एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्यों को आकाश पर चढ़ा देती और पाताल में भी ढकेल देती है। सत्संगति से मनुष्य बड़े २ पद यहां तक की परमात्मा का भी साक्षात्कार कर लेता है और कुसंगति से पतितातिपतित बन जाता है। वे पुरुष धन्य हैं जिन्हें सत्संगति करने का अवसर मिलता है चाहे वह थोड़े ही समय के लिये भी क्यों न हो। महात्मा तुलसीदास जी ने कहा है:-

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, हरे रोग अरु व्याध॥

यह समय ऐसा युग आगया है कि जहाँ बैठिये, जहां खड़े होइये, हाट जाइये बाजार जाइये, नाटक और सिनेमा जाइये तीर्थ और तमाशे में जाइये हर जगह बुरी बातें और कुसंगति की भरमार है। अच्छी बातें, भगवत् चर्चा तो विरले ही सुनने में आवेगी। अश्लील गीत और घासलेटी पुस्तकें तो गली २ मारी फिरती हैं। सिगरेट बीड़ी पान, तम्बाकू, खैनी, पीनी, शराब, ताड़ी और गन्दे पर्चाओं की बातें जहाँ चाहिये सुन लीजिये। स्कूल के विद्यार्थियों से कुछ और ही बातें सुनने को मिलेंगी और रंगीले सियानों से कुछ और ही। मतलब यह है कि सत्संगति तो ऐसा दूर भागा जैसे घोड़े के सिर से सींग॥

पर स्मरण रहे बिना सत्संग के न यह जीवन सुधर सकता है और न वह। न लोक का रह सकता न परलोक का। धोबी के कुत्ते की नाई घर और घाट दोनों से बेकार हो जाना पड़ता है। अतएव अपनी सारी शक्ति सत्संग में ही बिता देने की चेष्टा करनी चाहिये।

प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण

(ले० श्री भक्तरत्न मथुराप्रसाद जी विशारद जज)

हरि प्रेमाधिकारी भ्रातृगण! प्रेमीजन को जो शान्ति प्राप्त होती है उसका वर्णन गत अङ्क में आप पढ़ चुके हैं। उसके अनन्तर अव्यर्थ कालत्वं सुनिये:-

काल कैसी अमूल्य वस्तु है विचार कीजिये बड़ा राज्य विभूति एक सांस का मोल नहीं हो सकती ऐसी छब्बीस हजार सासें मनुष्य के एक दिन रात में आती जाती हैं। ऐसे दिन रात एक वर्ष में ३६० व्यतीत होते हैं।

अब गणना कीजिये पूर्ण आयु सौ (१००) वर्ष की में कितनी सांसें हुई। पूर्ण आयु किसी विरले को मिलती है उसमें से रात्रियों में आधी उम्र बीत कर दिन भर मोह माया के चक्र में पड़ा हुआ मनुष्य कामोपभोग में बिता देता है कैसी

भयंकर भूल है। हरि प्रेम का चसका जिसे प्राप्त हो जाता है वह बड़भागी काल की महिमा जान कर एक सांस भी वृथा नहीं जाने देता। कहा भी है

सांस सांस पर हरि भजो वृथा सांस मत खोय।
ना जाने [illegible] पर अन्त समैया होय॥

और भी कहा है:-

आस फांस जाकी गरे तब लग परे परेश।
साँस सांस सुमिरें सुजन सुरस रास मधुरेश॥

जिनके गले में जगत् के विषय भोगों की आशा रूपी फांसी पड़ी है उन से प्रभु बहुत परे (दूर) है और जो प्रत्येक सांस पर उसका स्मरण करते हैं, समय को क्षण मात्र भी वृथा नहीं खोते उनहीं को प्रभु की प्राप्ति सुलभ है। जब हरि प्रेम का अंकुर हृदय क्षेत्र में उत्पन्न हो जाता है तो ऐसा प्रेमी काल को वृथा नहीं जाने देता प्यारे के चिन्तन और उसी के चरित्र श्रवण तथा गुण कीर्तन में ही समय व्यतीत करता है।

इसके अनन्तर तीसरा लक्षण विरक्ति है-

जब तक मनुष्य गुड़ खाता है शर्करा उसे प्राप्त नहीं होती वह शर्करा का स्वाद नहीं जानता, जब शर्करा का स्वाद आगया तो गुड़ का मिठास रुचिकर नहीं होता और जब मिसरी या कन्द उसके हाथ लग जाता है तो उसे चख लेने के बाद शर्करा और गुड़ को तुच्छ समझ कर त्याग देता है। इसी प्रकार जब तक सर्व सुख भंडार परमात्मा के प्रेम रस का आस्वादन नहीं मिलता तभी तक संसारी विषय भोगों में मन लगाये रहता है। जब संसार के किसी विषय भोग की इच्छा न रहे और स्वर्ग आदि के सुख भोग तथा मोक्ष तक की कामना चित्त से जाती रहे तो उसी को तीव्र वैराग्य कहते हैं। इसमें दृष्टान्त सुनिये-

एटलेन्टा नाम की एक सुप्रसिद्ध अति सुन्दरी रमणी ने यह प्रण कर लिया था कि जो पुरुष दौड़ने में उसे हरा देवे उसी के साथ विवाह करेगी। उस के सौन्दर्य पर मुग्ध होके बहुत से बलवान पराक्रमी पुरुषों ने उद्योग किया। परन्तु दौड़ने में कोई भी उसे जीत न सका। एक मनुष्य ज्युपीटर देव का उपासक भी उस सुन्दरी पर आसक्त हो गया उस ने अपने इष्ट को प्रसन्न करके यह वर मांगा कि एटलेन्टा से उसे विजय प्राप्त हो। परन्तु ज्युपीटर देवने अपने भक्त से कहा कि वह स्त्री तप करके अपने इष्ट से वर पाई हुई है इसलिये बल में उससे जीतना असंभव है तथापि एक युक्ति से मनोरथ तेरा सिद्ध हो सकता है सो तेरी भक्ति से सन्तुष्टहो हम स्वयं करते हैं।

ज्युपीटर ने दौड़के मैदान में सुवर्ण की ईंटें कई जगह रखदीं। और दौड़ का आरंभ हुआ एटलेंटा आगे निकल गई परन्तु सुवर्ण की ईंटें देख कर खड़ी हो गई और देखा कि कोई देखने वाला नहीं पीछे से जो दौड़ा आ रहा है उसकी दृष्टि भी नहीं पड़ती उसने ईंटें उठा कर वस्त्र में बांध कर बगल में दबाली और फिर दौड़ने लगी। और आगे जाकर उसने फिर कई सुवर्ण की ईंटें पड़ी पाईं। उसने उन्हें भी उठा कर वस्त्र में लपेट कर साथ लीं और कुछ दूर और दौड़ने पर उसने और ईंटें उठाईं। परन्तु बोझा बढ़ गया और कई स्थानों में ठैरना पड़ा इस कारण से आखरी मंजिल पर पहुंचते २ थक गई ज्युपीटर भक्त मध्य में कहीं नहीं ठैरा अन्तिम बाजी उसी के हाथ आगई वह आगे निकल गया। और लालच में आकर एटलेंटा हार गई और जितनी सम्पत्ति उसके पास थी सब के सहित उस विजयी मनुष्य की विवाहिता भार्या बनगई। लालच ऐसी बुरी वस्तु है। भगवत् भक्त वैरागी होकर किसी लालच में नहीं आते। जिसको किसी संसारी

विषय का लालच हुआ बन्धन में आगया भगवत् प्रेम रूपी सिंह जिस समय गरजने लगता है संसार के विषय भोग की वासना रूपी शृगाल वहां कदापि नहीं ठैर सकते।

चौथा लक्षण प्रेमी का मानशून्यता है, मनुष्य को जहां किसी प्रकार की लौकिक या पार लौकिक संपदा प्राप्त हो जाती है बड़ा भारी अभिमान उसके शरीर में उत्पन्न हो जाता है। मैं धनवान् हूं, विद्वान हूं, अधिकार वाला हूं, मुझे सन्तान का सुख प्राप्त है, मेरी भार्या रूपवती आज्ञा पालक है इत्यादि जगत् के नश्वर पदार्थों को पाकर मदान्ध हो जाता है। उधर योग, तप ब्रह्मचर्य आदि पार-लौकिक सम्पत्ति पाके भी मनुष्य के चित्त में यह भाव उत्पन्न हो जाता है कि मैं योगी हूं, तपस्वी और सत्कर्म निष्ठ हूं। और जहाँ अभिमानता चित्त में आई पतित हुआ। हरि प्रेम का अंकुर उगने आने के बाद जगत् के किसी पदार्थ में ममता रहती ही नहीं। जो कुछ है सब जगदीश्वर का है मेरा कोई और कुछ भी नहीं। न कोई लौकिक पदार्थ सुखदाई अथवा मेरा हितकर है ऐसी दृढ़ भावना हो जाने से अभिमान का गंध भी चित्त में नहीं रहता।

गुरु नानक जी फरमाते हैं—

अब हम चली ठाकर पै हार—
जब हम शरन ठाकुर की आई राख प्रभु भावै मार,
लोकन की चतुराई उपमा तें वैसन्दर जार।
कोई भला कहौ भावै बुरा कहो हम तन दीनो है डार॥

प्रयोजन यह कि संसार में चतुराई को बड़ाई होती है चतुर मनुष्य का आदर सब ही करते हैं। प्रभु की शरण में आकर सांसारिक चतुराई को आग में झोंक दिया। कुछ परवाह नहीं चाहे कोई बुरा कहो या भला गुरु नानक जी कहते हैं कि हमने तो अपना तन डार दिया अर्थात् शरीर और आत्मा सब प्रभु के चरणों में अर्पण कर दिया।

गीता में ज्ञान के लक्षणों में सब से पहले अमानित्व अर्थात् निरभिमानता को वर्णन किया है, और लिखा है। 'निर्मानमोहाजित संग दोषा' अर्थात् जिसके मान नहीं और मोह नहीं और संग-दोष को जीतने वाला ही अव्यय पद को प्राप्त होता है। श्रीगौरांग महाप्रभु की आज्ञा है कि:-

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदाहरिः॥

अपने को तिनके से भी नीचा समझे और वृक्ष की तरह सहन शील और मान (गर्व) रहित होकर दूसरे का मान प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला, ऐसा मनुष्य हरि कीर्तन का अधिकारी होता है। प्रेमी को मान का लेश नहीं रहता। इसमें दृष्टान्त सुनिये। एक राजा के दो पुत्र थे उनमें बड़ा बेटा बाल्य अवस्था से ही सन्तों की संगत में रह कर विरक्त हो गया था घर में रह कर भी विषयों से उसे पूर्ण वैराग था और ईश्वर प्रेम का अंकुर उसके हृदय में अंकुरित हो गया पिता के देहान्त पर मन्त्रियों ने अनुग्रह करके उसे राज गद्दी पर बैठा दिया। परन्तु उसके छोटे भ्राता को भोग विलास की बड़ी भारी इच्छा थी। वह अपने ज्येष्ठ भ्राता से मन में द्वेष रखने लगा और उसके मारने के लिये गुप्त विष प्रयोग आदि की चेष्टा करने लगा। ज्येष्ठ भ्राता को भी उसका ऐसा आशय विदित हो गया तब वोह ईश्वर भक्त वैराग्यवान् तो था ही राज संपत्ति को तृण समान तुच्छ मान रात्रि के समय परिछिन्न रीति से राज पाट को छोड़ वृन्दावन की तरफ चल दिया। छोटा भाई तो चाहता ही था झट ही गद्दी पर विराज कर यथेच्छ विषय भोग में प्रवृत्त हो गया परन्तु उसके दुराचारों से प्रजा तंग आकर बदल गई और दो वर्ष के अन्दर ही एक और राजा

ने चढ़ाई करके राजधानी पर अपना सत्व जमा लिया। इसको प्राण बचा कर भाग निकलने के सिवाय कोई उपाय न सूझा। अब अपने कृत्यों पर लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगा। और बहुत दिनों कष्ट सह कर उसी महात्मा अपने ज्येष्ठ भ्राता की शरण में बहुत कहने लगा कि मुझे भी भगवद्भक्ति की शिक्षा दीजिये। हरिभक्त तो स्वभावतः दयालु होते ही हैं। उसे अपनी शरण में अंगीकार कर लिया जब छै मास तक उसने विरक्त दशा में रह कर भजन कर लिया तो बड़े भाई के पास आकर बोला कि अब मेरे शरीर में कोई वासना नहीं रही यथा विधि दीक्षा देकर मुझे भी भगवत् दास की पदवी प्रदान की दीजिये।

महात्मा ने कहा जब तक शरीर में मान की गन्ध भी रहे सच्चा प्रेमी नहीं हो सकता अभी छह मास और भजन करो तथा मान शत्रु पर विजय प्राप्त करो। उसने ६ मास और व्यतीत किये। महात्माने उसकी परीक्षा के निमित्त एक मेहतर (भंगी) को इशारा कर दिया कि प्रातःकाल जब स्नान संध्या करके भावी भक्त अपने स्थान से बाहिर आवे तुम मार्ग में झाड़ू लगाते हुए धूलि उसकी तरफ उड़ाना। भंगी ने ऐसा ही किया परन्तु नये भक्त के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और कांप करके उस मेहतर को गाली प्रदान करके बोले हमारे पवित्र शरीर को गंदा कर दिया चांडाल तू अवश्य दण्डनीय है। फिर दुबारा स्नान कर के महात्मा जी के पास आकर निवेदन करने लगे कि महाराज अब तो छः महीने और भी आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने भजन कर लिया। महात्मा बोले तुम को शरीर की पवित्रता का अभिमान तो ज्यों का त्यों विद्यमान है अभी और छः मास भजन करते हुए मान शत्रु का दमन करो। जिज्ञासु ने फिर ६ मास आज्ञा का पालन किया। और समय की अवधि पर महात्मा के निकट आने लगे। तो महात्मा के इशारे से चांडाल ने मार्ग की धूलि और कूड़े की भरी टोकरी उनके शरीर पर गिरादी।

इस बार जिज्ञासु के चित्त को क्षोभ तो हुआ परन्तु चांडाल को कुछ न कह कर उलटे स्थान पर जा के स्नान करके कपड़े बदल कर महात्मा के पास आये। महात्माने कहा अभी शरीराभिमान बाकी है और छः मास भजन करो।

अब तीसरी बार अवधि समाप्त होने पर जब जिज्ञासु महात्मा के निकट आने लगा चाँडाल ने मल मूत्र की टोकरी उनके शरीर पर औंधा दी परन्तु इस बार भक्त को प्रभु के प्रेम में शरीर की तरफ कुछ ध्यान ही न था। वो हंसते हुए उसी दशा में महात्मा के पास आके उनके चरणों पर गिर गये और किञ्चिन्मात्र भी विकार चित्त में न था। तब महात्मा ने उठाके छाती से लगा लिया और सच्चा सन्त मान लिया। जब राजा को प्रेम प्रभाव से पा लिया तो भजन का प्रताप और गौरव दिखाने के लिये महात्मा ने यह चमत्कार भी दिखा दिया कि जिस शत्रु राजा ने उसका राज्य छीन लिया था वो त्राहि त्राहि पुकारता हुआ महात्मा के चरणों में गिर कर कहने लगा कि महाराज! मुझ से बड़ा अपराध हुआ क्षमा कीजिये और राज्याधिकार पूर्व राजा को ही देता हूं मुझे प्राण दान देकर अपना शिष्य बना लीजिये। महात्मा ने उस नये प्रेमी अपने लघु भ्राता से कहा कि जाके राज्य करो। परन्तु वह तो सच्चा हरि प्रेमी हो चुका था काम क्रोध मान आदि शत्रुओं पर विजय पा चुका था। हाथ जोड़ कर बोला भगवन् कीचड़ से निकले हुए को पुनः कीचड़ में न ढकेलिये। जो आनन्द भगवत् भजन में है राज्य में उसका कोटिवां अंश भी नहीं

है। निजानन्द भगवान योग ऐसा पदार्थ है। कि जिसकी प्राप्ति के अनन्तर कोई संसारी वासना नहीं रहती और देहाभिमान का गंध भी नहीं रहता। इसी लिये गुरु नानक ने कहा है कि:-

मोहन की बतराई उपमा पै बैसन्दर डार।
कोई भला कहो भावै बुरा कहो हम तन दीनो है डार॥

धारा तरवार की

(ले० श्री० गंगाविष्णु पाण्डेय, विद्याभूषण, विष्णु)

माया-मोह छोड़ना पड़ेगा सत्य मानिये औ,
तोड़नी पड़ेगी आशा झूठी घर बारकी।
भाई-बंधुवों से मुख मोड़ना अवश्य होगा,
त्याग देनी होगी प्रेम प्रीति परिवार की।
पुत्र और नारिका वियोग भी उठाना होगा,
भूलनी पड़ेगी कूटनीति हर बार की।
सारे कुचाल चितसे हटाना होगा विष्णु क्योंकि,
ज्ञानकी गली है तेज-धारा-तरवारकी।

(२)

गालियां सुनाना एक पागल बनाना एक,
बोली मटकाना है बनाना जीवनार की।
घूमना गली गली में प्रेम के नशे में मस्त,
ढूंढ़ना यहां वहां सलोनी मूर्ति यार की।
विष्णु का नजारा यदि होगया तो सारा दुःख,
दूर होयगा नहीं तो राह लो मजार की।
प्रेमी कष्ट झेलना हजारों हार मान कर,
प्रेम की गली है तेज धारा तरवार की।

मनोनाश के साधन

योग के विघ्न

(ले० श्री महात्मा राम)

योगाभ्यासी पुरुष को नौ प्रकार के विघ्न योग में बाधा करते रहते हैं इन विघ्नों से योगी को सावधान रहना चाहिये।

१ व्याधी-रोग ज्वर आदि ये रोग कुपथ्यादि भोजन से अथवा इन्द्रियों के विकारों से होते हैं।

२ स्त्यान-काम करने की शक्ति न होनी।

३ संशय-मैं योग साधन कर सकूंगा कि नहीं करने पर भी सफलता होगी कि नहीं इस प्रकार का संशय बना रहना।

४ प्रमाद-साधन करने की शक्ति होते हुए भी योग साधन न करना।

५ आलस्य-शरीर अथवा चित्त के भारी होने से योग साधन में न लगना।

६ अविरति-विषय विकारों में चित्त के लगे रहने से योग में मन का न लगना।

७ भ्रान्ति दर्शन-मिथ्या ज्ञान अन्य वस्तु का ज्ञान होना जैसे रज्जु में सर्प का ज्ञान।

८ अलब्ध भूमिकत्व-अभ्यास करते हुए भी समाधि अवस्था में न पहुंचना।

९ अनवस्थितत्व-समाधि भूमि में प्राप्त होकर भी चित्त का उसमें न ठहरना।

ये योग के प्रतिपक्षी होने से योग के विघ्न कहे जाते हैं।

१ दौर्मनस्य-इच्छा के पूरा न होने से मन में क्षोभ होना।

२ अंगमेजयत्व-शरीर के अङ्गोंका कांपना।

३ श्वास–बिना ही इच्छा के वायु का बाहर से अन्दर प्रवेश करना।

४ प्रश्वास–बिना इच्छा भीतर के वायु का बाहर जाना ये चार बातें विक्षिप्त चित्त वाले योगी को होती हैं।

अब इन विघ्नों के निवृत्ति के उपाय कहते हैं।

सूत्रः–तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः।

उन सर्व विक्षेपों की निवृत्ति के लिये एक तत्व आत्मा का अभ्यास करना चाहिये आत्मा में चित्त के एकाग्र होने से सर्व विक्षेप नष्ट हो जाते हैं। यह साधारण उपाय है।

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥

मैत्री, दया, प्रसन्नता, उपेक्षा इन साधनों की भावना करने से चित्त निर्मल होता है।

ईर्ष्या, घृणा, असूया, अमर्ष (असहनपना) इन चारों दोषों के विद्यमान होते हुए नित्य प्रति अभ्यास करने वाले योगी के चित्त में भी शान्ति नहीं हो सकी। इसलिये इन दोषों की निवृत्ति के लिये मैत्री आदि चारों साधनों का अभ्यास करना आवश्यक है। सुखी पुरुषों को देख कर ईर्ष्या न करके मित्रता का व्यवहार करे। और दुःखी पुरुषों को देख कर उनसे घृणा न करके दया का व्यवहार करे अर्थात् किस प्रकार इसके दुःख की निवृत्ति हो मैं इसकी क्या सहायता करूं इत्यादि भावना करे। इसी प्रकार पुण्यात्माओं को देख कर हर्ष करे दुःखी न हो अच्छा समझे और दूसरों को भी कहे कि देखो यह इसके पुण्य का फल है यदि हम और आप भी धर्म पुण्य करें तो इसी भान्ति सुख के पात्र बन सकते हैं ऐसी भावना करने से असूया दोष नहीं होता है।

पापी लोगों के साथ उदासीन भाव रखना अच्छा है यदि अपने पास में कोई दुष्ट पुरुष पाप कर्म को न त्यागे तो उसकी उपेक्षा कर देवे। ऐसी भावना करने से अमर्ष (असहनपना) दूर हो जाता है। इन उपायों से मन के दोष निवृत्त होकर निर्मलता होती है निर्मल मन वाले योगी को समाधि में चित्त की स्थिरता का लाभ होता है। उपरोक्त साधनों को करते हुए प्राणायाम का अभ्यास भी अति हितकर होता है।

यथाभिमत ध्यानाद्वा।

इस समाधि अवस्था में चित्त के रोकने को जिसका ध्यान अपने लिये अभीष्ट हो उसका ध्यान करने से भी चित्त की स्थिति होती है। जिस कदर ध्यान करते करते चित्त की स्थिरता होती जायेगी उसी कदर समाधि का लाभ होता जायगा इसी ध्यान की एकाग्र अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि अवस्था में जितना मन का स्थिरी भाव होता है उतना ही सुख का प्रादुर्भाव होता जाता है समाधि के सुखाविर्भाव में साथ ही विघ्न भी उपस्थित होते हैं। जो समाधि के लिये बाधा डालते हैं उन विघ्नों को हटाता हुआ निरन्तर अभ्यास में तत्पर रहने वाला योगी सर्व दुःख रूप संसार के मूल कारण अज्ञान को तर जाता है। समाधि रूप आनन्द भवन में प्रवेश करने वाले पुरुष को चार विघ्न आ उपस्थित होते हैं जिनके नाम लय, विक्षेप, कषाय, रसास्वाद हैं। आसन पर बैठ कर अभ्यास करते समय निद्रा के वश होना 'लय' कहा जाता है। और अभ्यास काल में मन के अन्दर इन्द्रियों के विषय विकारों का अनुसंधान (स्मरण) होना विक्षेप है। किसी के साथ राग अथवा द्वेष के बढ़ जाने से अभ्यास करते समय भी उसके खयाल से मन का स्तब्धी भाव (जड़) हो जाना कषाय है। समाधि के आरम्भकाल में जो

सविकल्प समाधि के आनन्द का स्फुरण (झलक) है उसी आनन्द में संतुष्ट हो जाना, उस आनन्द के आस्वादन को ही आनन्द मान लेना, आगे होने वाले आनन्द के लिये अभ्यास न करना रसास्वाद कहा जाता है।

ये चार प्रकार के विघ्न समाधि में आत्मानन्द के प्रतिपक्षी हैं। इन विघ्नों की निवृत्ति के उपाय श्रीगौड़ पादाचार्य ने कहे हैं।

'लयं संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः।
सकषायं विजानीयात्समप्राप्तं न चालयेत्,
नास्वादयेद्रसं तत्र निःसंगः प्रज्ञया भवेत्' ॥

योगी को अभ्यास करते समय जब निद्रा आने लगे तब प्राणायाम करके अथवा निद्राशेष की निवृत्ति करके तथा स्वल्प भोजन आदि से वा जल से मुंह हाथ धोकर किसी न किसी उपाय से निद्रा को हटा कर चित्त को अभ्यास में जागृत करे।

विक्षेपको प्राप्त हुए चित्त को विषयों में दोष दर्शन करके तथा ब्रह्म का चिन्तन करके अथवा सत्संग उपासना आदि उपायों से मन को एकाग्र करे।

मनके स्तब्ध हो जाने पर राग द्वेष के कारण को ठीक २ जान कर राग आदि दोषों की निवृत्ति करके कषाय की निवृत्ति करे और सम ब्रह्म में प्राप्त हुए चित को चलाय मान न होने दे। और समाधि के आरम्भ काल में प्राप्त हुए सविकल्पक आनन्द को भी आस्वादन नहीं करे किन्तु उदासीन प्रज्ञा धारण करके मुक्त हुआ असंप्रज्ञात समाधि में प्राप्त होवे उपरोक्त विघ्नों की निवृत्तिसे संप्रज्ञात समाधि के अभ्यास की प्रबलता से असंप्रज्ञात समाधि में प्राप्त हुआ योगी ब्रह्मानन्द के रसका आस्वादन कर के कृत कार्य हो कर तृप्त हुआ सदा के लिए संतुष्ट होकर परम शान्ति को प्राप्त हो कर फिर संसार को तथा संसार के दुःखों को नहीं देखता। और वह सब को अपना आत्मा रूप जान कर सर्वथा आनन्द ही आनन्द में रहता है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

योग-साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

२४१ शत्रुओं पर विजय पाने से या अन्य राजाओं के देश पर आधिपत्य जमाने से क्या लाभ है? अपने भीतर के शत्रु काम, क्रोध और लालच आदि को जो कभी तुम नहीं होने वाले हैं विजय करो। आलस्य और प्रमाद व निद्रा को जीतकर गुडाकेश बनजाओ जैसाकि अर्जुन और लक्ष्मण ने किया था। तब ही तुम बलवान और शक्ति सम्पन्न बनोगे।

२४२ केवल वैराग्य से तुमको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होगी और न ही इससे तुम्हारे मूल अज्ञान अविद्या का नाश होगा। केवल आत्मा के ज्ञान ही से अविद्या जनित दोषों का नाश होगा। अविद्या जनित दोष मन, इन्द्रियां, प्राण और स्थूल शरीर हैं।

२४३ आत्मा समस्त विश्व का अधिष्ठान है। यह बुद्धि का सार्च है। इसमें समस्त पदार्थ प्रकाशित होते हैं। ऐसा आत्मा ढूंढने, समझने और अनुभव करने योग्य है।

२४४ तुम प्याज़ को लेकर छीलो, उसके छिलके उतारते जाओगे और अन्त में कुछ भी नहीं रहेगा। इसी प्रकार अपने आपको पांच कोशों से पृथक् करके इस झूठे संसार के प्रपंच को पहचानो फिर

यह प्याज के छिलके की भान्ति कुछ भी शेष न रहेगा। आत्मा तो अविनाशी ब्रह्म है।

२४५ किसी पौदे की डण्डी को लो और उसका छिलका उतारते चले जाओ अन्त में उसके भीतर कुछ भी नहीं मिलेगा। यही हाल इस मिथ्या मैं" अर्थात् झूठे "अहंकार" का है।

२४६ हमारा जीवन प्रकृति में ऐसा ही है जैसे पानी के बुदबुद। यह बहुत क्षणिक है आत्मा में निवास करो और अनन्त आनन्द का उपभोग करो।

२४७ जिस प्रकार बिजली आंख की झपक में चमकती है और फिर अदृष्ट हो जाती है इसी प्रकार शरीर आते हैं और शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। यह पार्थिव जीवन बहुत कम स्थिर रहने वाला है। शीघ्र ब्रह्म बनने का उपाय करो। सब काल में ओ३म् का जाप करते रहो ओ३म् को याद रक्खो ओ३म् ही ब्रह्म है।

२४८ जिस प्रकार बरफ के ढेर समुद्र से निकलते हैं उसी प्रकार यह नाम व रूप ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं और जिस प्रकार यह बरफ के ढेर गलकर समुद्र में मिल जावेंगे वैसे ही नाम व रूप ब्रह्म में लीन हो जावेंगे। उसको जान कर यह शान्त हो जावेंगे। "अयम् आत्मा शान्तो:" यह आत्मा शान्त स्वरूप है।

२४९ राम, ओ३म् या नमः शिवाय किसी मन्त्र का कम से कम २ घण्टे नित्य प्रति जप करो और अपने अन्तरात्मा में हृदय से भाव सहित प्रार्थना करो, तुम्हारे अज्ञानान्धकार के लिये यह सब से उत्तम औषधि है, इससे साध्य और असाध्य समस्त प्रकार के रोगों का नाश हो जावेगा। यह सब से उत्तम बाजीकरण है, मेरा विश्वास करो, अभ्यास करो, जप करो। मैंने एक जप प्रोपेगण्डा आरम्भ किया है।

२५० ब्रह्म विद्या का प्रचार करना सब से बड़ा यज्ञ है, सब से बड़ा दान है, सर्वोत्तम कर्म है, और महान योग है। यदि एक भी जिज्ञासु की आत्मा जाग्रत हो जावे तो हमारा कर्तव्य पूर्ण हो गया और हमारा जन्म सफल हो गया।

२५१ किसी ने राजा युधिष्ठिर से पूछा "अय युधिष्ठिर! जब तुम अपनी माता कुन्ती की तरफ देखते हो तो क्या तुम्हारी चेष्टा पवित्र रहती है?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया "मैं नहीं कह सकता कि मेरे विचार पूर्णतया पवित्र रहते हैं" काम इतना बलवान है।

२५२ श्रीव्यास जी ने अपने शिष्य जैमुनी की परीक्षा करनी चाही। व्यास जी ने स्त्रियों के वस्त्र पहन कर जैमुनी की कुटिया में जा प्रवेश किया। जैमुनी कामातुर होकर उसको पकड़ने दौड़े। ऐसा करने पर व्यास जी अपने असली रूप में प्रकट हो गए। जैमुनी उनकी डाढ़ी देख कर बड़ा हताश हुआ और अपने इस विपरीत कामसे बहुत लज्जित हुआ। काम वेग इतना बलवान है॥

२५३ एक ऋषि एक मछली को मैथुन करते देख कर कामातुर हो गया। ध्यान करने की बात है कि ऋषि भी जो तप करते थे काम के वश हो जाते थे, इसी लिए गीता में कहा है। अय! कुन्ती पुत्र, बुद्धिमान पुरुष की भी इन्द्रियाँ तीव्र प्रयत्न करने पर भी चित्त को बलात्कार भोगों की तरफ खेंच ले जाती हैं।

२५४ जिस प्रकार वायु जहाज़ को चक्र में डाल देती है इसी प्रकार इन्द्रियों के पीछे चलने वाला मन बुद्धि को नष्ट कर देता है।

२५५ विचार करो कि राजा भर्तृहरि अपनी साधन अवस्था में किस प्रकार विलाप करता था? "अय परमात्मा! मैंने अपने परिवार और राज्य का त्याग किया। मैं पत्तों पर, फलों पर और कन्द

मूलों पर निर्वाह करता हूँ। ज़मीन मेरा पलंग है, आकाश मेरा शामियाना है, दिशाएं मेरे वस्त्र हैं परन्तु फिर भी काम ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा है। काम का वेग इतना प्रबल है।

२५६ गीता में कहा है कि काम अग्नि की भांति कभी तृप्त होने वाला नहीं है। यह अजय है। भोगों से कभी तृप्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार अग्नि घृत से अधिक प्रज्वलित होता है ऐसे ही भोगों से वासनाएं तीव्र होती हैं। वैराग, त्याग, तप, प्रार्थना जप और ध्यान द्वारा काम रूपी भयानक रोग का समूल नाश हो सकता है।

२५७ सुरापान, स्वर्ण की चोरी, ब्रह्म हत्या, गुरु पत्नि से भोग और ऐसे मनुष्यों का संग यह पाँच महा पाप हैं।

२५८ ब्रह्म यज्ञ (सन्ध्या) ऋषि-यज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथी यज्ञ यह पंच महायज्ञ हैं जो प्रत्येक गृहस्थी को नित्य करने चाहिएं।

२५९ ब्रह्मयज्ञ-ब्रह्म के निमित्त बलि देना, वेद व उपनिषद् का स्वाध्याय, ध्यान, और प्रणव का जप। ऋषियज्ञ-ऋषि तर्पण को कहते हैं। श्राद्ध और पितृ तर्पण को पितृ-यज्ञ कहते हैं। मछली, गाय, काग आदि जानवरों को बलि देना भूतयज्ञ कहलाता है। अतिथियों का सत्कार व सेवा अतिथी यज्ञ कहलाता है अतिथी को नारायण समझना चाहिए। इसको मनुष्य यज्ञ भी कहते हैं। इन पञ्च यज्ञों के करने से चित्त की शुद्धि होती है।

१. प्रत्यक्ष प्रमाण
२. अनुमान
३. शब्द प्रमाण (वेद वाक्य और आप्त पुरुषों के वचन।
४. उपमान
५. अर्थापत्ति
६. अनुपलब्धि।

यह वेदान्त के प्रमाण हैं:-

२६० जिस गृहस्थी ने संसार के दुःखों का अच्छी तरह अनुभव कर लिया है वह इस सांसारिक बन्धन को तोड़ना चाहता है। एक यौवनावस्था से परिपूर्ण युवक ख़याल करता है कि मैं स्त्री और सन्तान के अभाव से बड़ा अभागा हूं वह अपना विवाह करने की चिन्ता व लग्न में रहता है यह माया है। यह मन का चक्र है, इससे सावधान रहो।

२६१ एक डाक्टर विचार करता रहता है, कि वकालत के पेशे में अधिक आमदनी है, इसी प्रकार वकील सोचता है कि डाक्टर स्वतंत्र और माननीय होते हैं। दोनों ही भ्रम में पड़े हुए हैं। यह माया है। यह भी मन का धोखा है। सावधान रहो और विवेक की अवस्था को प्राप्त करो।

२६२ दार्जलिङ्ग में रहने वाला मनुष्य ख़याल करता है कि मंसूरी अच्छा स्थान है। इसी प्रकार मंसूरी वाला विचार करता है कि नैनीताल अच्छा है। यह सब मन का धोखा है। स्थान का परिवर्तन केवल लालच ही है। भ्रमण करना छोड़ दो। तिरुवण्णामलै के रमण महर्षि की तरह एक स्थान को दृढ़ता से पकड़ लो। यह योगी एक ही स्थान पर ३७ वर्ष से टिका हुआ है। इस काल में यह महापुरुष एक दिन के लिए भी अन्य स्थान पर नहीं गया। तुम जहां जाओगे वहां तुमको वही आकाश, वही पृथ्वी और वही पञ्च तत्व दिखाई देंगे और तुम्हारी वासनाएं सब जगह तुम्हारे साथ रहेंगी। एक ही स्थान में शान्ति से रहो और परमात्मा का ध्यान करो।

२६३ जब तुम प्रातःकाल उठते हो तो सबसे पहले प्राण गति करता है उसके पीछे समस्त

इन्द्रियां अपना काम करती हैं। प्राण श्रेष्ट है और ज्येष्ठ है यह सबसे पहले उत्पन्न हुआ है।

२६४ जब तुम किसी पुस्तक को सीने लगते हो तो सूई बड़ी तेजी से भिन्न २ पृष्ठों में से गुज़रने लगती है। किसी न किसी प्रकार धीरे २ सूई एक२ पृष्ठ को छेदकर पार होगई और समय भी बहुत कम लगा? इसी प्रकार यद्यपि तुम एक ही बार सुनते देखते और सूंघते हुए अनुभव करते हो परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। केवल ऐसा प्रतीत ही होता है। इन्द्रियों की गति इतनी तीव्र है कि तुमको सूँघना, सुनना और देखना एक साथ होता प्रतीत होता है।

२६५ मन और इन्द्रियों के परस्पर के सम्बन्ध से वस्तु का ज्ञान होता है और यही कारण है भिन्न २ ज्ञान तन्तुओं द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान मन से जाना जाता है। तुम अपने जीवन में नित्य ऐसी घटनाएं देखते हो जिसमें लोग कहते हैं कि मेरा चित्त और ध्यान में लगा हुआ था इससे मैं उस वस्तु को नहीं देख सका। इससे प्रमाणित होता है कि ज्ञान तन्तुओं और मन के बीच सम्बन्ध है।

२६६ रूप वाले जितने भी पदार्थ हैं वह उत्पत्ति और नाश वाले हैं। यह कहना बकवास है कि चैतन्य ब्रह्म उत्पत्ति व नाश वाला है। वह तो निराकार है और केवल ज्ञान है।

२६७ बहुत आदमी कुण्डलिनी को जाग्रत करने और सिद्धियां प्राप्त करने के लिए आश्चर्य और आशा से शीर्षासन और अनेक आसनों का आरम्भ करते हैं परन्तु वह देर तक अभ्यास नहीं करते, दो तीन मास अभ्यास करके छोड़ देते हैं। यह दृढता और प्रयोग नहीं है। सफलता और सिद्धि के लिए सन्तोष और धैर्य की आवश्यकता है केवल जोश से कुछ नहीं होसकता।

२६८ वीर पुरुष केवल एक बार मरता है परन्तु कायर अपनी मृत्यु से पहले अनेक बार मरता है। आत्मा का ध्यान करो वीरता आप उत्पन्न होजावेगी। आत्मा अमर है।

२६९ निष्काम भक्ति बड़ा कठिन काम है। ऐसी भक्ति तो प्रह्लाद जी ने की थी। इस मार्ग में सौदे का काम नहीं है। यह तो प्रेम के लिए ही प्रेम करना है। यह प्रेम आसक्ति रहित होता है। सकाम भक्ति भी निष्काम भक्ति में परिवर्तित होसकती है परन्तु समय लगता है। तुम परमात्मा की भक्ति करो चाहे कैसी भी करो। भक्ति का स्वभाव बनाओ धीरे २ इसका विकाश होजावेगा।

२७० ध्रुवजी की आरम्भ में सकाम भक्ति थी। पहले उनकी इच्छा राज्य प्राप्त करने की थी। एक दिन वह अपने पिता की गोद में राज्य सिहाँसन पर बैठे हुए थे। ध्रुव जी के पिता उत्तानपाद की दूसरी स्त्री ने उनको देखा और उनको राजा की गोद से उतार कर अपने पुत्र को उनके स्थान में बिठा दिया। यह ईर्षा का दृश्य है। यह ईर्षा सब प्रकार की बुराइयों की जननी है। माया संसार में इस वृत्ति द्वारा बड़े २ अनर्थ कराती है। धन्य है वह जिसमें ईर्षा नहीं है, ऐसे आदमी ही भगवान् का साक्षात् करते हैं। ध्रुव जी को इससे बहुत चोट लगी। उसने अपनी माता को सब हाल सुनाया। उसने अपनी माता से पूछा कि माता जी मैं सिहाँसन पर किस उपाय से बैठ सकता हूं? उसकी माता ने उत्तर दिया "मेरे पुत्र ध्रुव तू नारायण की दया से इस पदवी को प्राप्त कर सकता है" बालक ध्रुव जी वनको चल दिए वहाँ जाकर घोर तप किया भोजन करना छोड़ दिया और हरि के साक्षात् दर्शन पाए।

२७१ जब ध्रुव जी ने भगवान् के दर्शन किए तो

उनकी सकाम भक्ति निष्काम भक्ति में परिवर्तित होगई। उन्होंने राज्य की इच्छा नहीं की। उनकी सब इच्छाएं नष्ट हो गई। मनुष्य को और चाहिए भी क्या जब कि परमात्मा उसके सामने मौजूद हों। उसको नित्य तृप्ति हो जाती है और परमानन्द की उपलब्धि होती है जब उसका परमात्मा में वास हो जाता है।

२७२ राजा भर्तृहरि की भक्ति भी सकाम ही थी वह केवल प्रेमा भक्ति नहीं थी। उसकी स्त्री के दुराचरण ने उसको शिव की भक्ति करने के लिए लाचार किया था। अन्त में वह भी परमात्मा के निष्काम भक्त बन गए।

२७३ गरीबों की और रोगियों की सेवा करो। साधु महात्माओं की सेवा करो। सत्संग करो। प्रसाद लेकर साधु सन्तों की तलाश करो। जप करो राम नाम लो। ओ३म् का गान करो। परमात्मा को सर्वत्र अनुभव करो। सत्य आचरण करो। सत् चित् आनन्द में मग्न रहो। एकान्त और शान्त गुफा में प्रवेश करो ज्ञान की प्राप्ति स्वयं हो जावेगी।

२७४ ओ३म् ओ३म् और आत्मा को याद रक्खो। आत्मा शान्त है। आत्मा केन्द्र है। तुम केन्द्र से कभी पृथक् मत हो चाहे कैसी भी हालात हो केन्द्र में स्थित रहो शान्ति और शक्ति तुमको आप ही प्राप्त हो जावेंगी।

२७५ आत्मा के ज्ञान को तेल धारावत स्थिर रखना चाहिए। जिस प्रकार तेल को एक पात्र से दूसरे पात्र में डालते समय एक धारा बनी रहती है इसी प्रकार निरन्तर ध्यान जमा रहना चाहिए। इसका फल यह होगा कि सहज निष्ठा प्राप्त हो जावेगी अर्थात् जीवन का स्वभाव ही बन जावेगा। लम्बे किया हुआ थोड़ा अभ्यास भी बहुत फल दायक होगा। इस प्रकार का अभ्यास हर समय होसकता है। जब तुमको अवकाश मिले तो एकान्त कमरे में गहरी समाधि लगानी चाहिए। ज्ञान योग के लिए किसी विशेष स्थान या आसन की जरूरत नहीं है।

२७६ जब तुम किसी पदार्थ को देखो तो नाम व रूप की दृष्टि से ओझल करने का प्रयत्न करो यह परिवर्तन शील जड़ और मिथ्या है, तुम इस नाम व रूप के पीछे सच्चिदानन्द स्वरूप अस्ति, भाति, प्रिय रूप को लखने का प्रयत्न करो कालान्तर में भ्रमात्मक नाम व रूप स्वयं ही नष्ट होजावेंगे इसको सम्यक ज्ञान और वहिर्निर्विकल्प भी कहते हैं।

२७७ योग वासिष्ठ ज्ञान योग के लिए बहुत उत्तम पुस्तक है, इसको बार २ पढ़ना चाहिए। अष्टावक्र गीता, अष्टा वक्र गीता, ज्ञान योग के लिए बहुत श्रेष्ठ पुस्तकें हैं।

२७८ लघु वासुदेव मनन जिसका अंगरेजी भाषान्तर थियोसोफीकल पब्लिशिंग हाउस अदयार मद्रास से मिलता है पढ़ना चाहिए। आरम्भ करने वाले के लिए वेदान्तसार और दृक् दृश्य विवेक पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। इन पुस्तकों के अंगरेज़ी भाषान्तर राम कृष्ण अद्वैताश्रम पुस्तक भण्डार नं० ४ विलिंगटन लैन कलकत्ता से प्राप्त होसकते हैं।

२७९ पवित्रता, मान, ऐश्वर्य, शक्ति, शान्ति सदैव तुमको प्राप्त हों। तुम आत्मा हो तुम सत्य हो तुम ब्रह्म हो, तुम ही जीवन ज्ञान और आनन्द हो, मेरे मित्रो! जब तुम इन्द्रियां, मन, प्राण, सूक्ष्म और कारण शरीर को लोपकर देखोगे तो तुमको विदित होजावेगा कि मैं ही सबकुछ हूं।

२८० तुम सिद्ध हो, परन्तु अज्ञान के कारण

अपने को भेड़का बच्चा समझ रहे हो। खड़े होजाओ, निश्चय करलो कि मैंने इस अविद्या का नाश करना है फिर तुम सिंह की भान्ति गरजने लगोगे। वेदान्त के सिंह बनजाओगे। ओ३म्, ओ३म्, ओ३म्, ॥

किसकी ?

(श्रीमती व्रज कुमारी "प्रभाकर")

किसकी ? परीक्षा में खड़े हैं शैल ज्ञान विसार कर।
किसकी ? है खोज बयार करता दश दिशामें प्रसार कर॥
किसकी ? वह ताकता देखता है शशि निशामें प्रभा कर।
किसकी ? आकांक्षा से रवि है नित्य आता धाय कर॥
किसका ? संदेशा बयार दे जो कुसुम खिल उठता तभी।
किसका ? निराशित गिर कुसुम उठता नहीं वह फिर कभी॥
किसका ? लगाये ध्यान बैठा अचल निर्भय वारधी।
किसका ? है सुन्दर भाल जो आमोद पाता धार धी॥
किसका ? है मंजुल हृदय जिसमें प्रेम पयोधि बह रहा।
किसका ? है भारी वियोग जो ग्रीष्म पवन दुख दह रहा॥
किसके ? हैं स्वागत करने को अनुदिन लतायें बढ़रहीं।
किसके ? लिये उपहार ले फूलों से 'व्रज" ये खिलरहीं॥

श्रुति-सार

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो। त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥ १०॥

हे मृत्यु! गौतम गोत्रीय मेरा पिता मेरे प्रति शान्त चित्त, प्रसन्न मन, विगत रोष, जैसे होवे आप के भेजे हुवे मुझ को देख कर स्वस्थ स्मृति होकर कि यह वही मेरा पुत्र है जिसको मैंने मृत्यु के पास भेजा था यह तीन में से पहला वर चाहता हूं॥ १०॥

यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः। सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्॥ ११॥

उद्दालक वंशी अरुण का पुत्र जैसा पहिले था वैसा ही मुझसे प्रेरित वा बाधित होकर तुझ पर विश्वास करने वाला होगा। शेष रात्रियों में भी वह सुख से सोवेगा और वीत रोष होकर तुझ को मौत के मुंह से छुटा हुआ देखेगा॥ ११॥

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥

स्वर्ग लोक में कुछ भी भय नहीं है। न वहां पर तू मृत्यु है और न कोई बुढ़ापे से डरता है। भूख और प्यास दोनों को तर कर शोक से वर्जित पुरुष स्वर्ग लोक में आनन्द करता है॥ १२॥

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्। स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण॥

हे मृत्यो! सो तू स्वर्ग का साधन भूत ज्ञानाग्नि को जानता है उसको श्रद्धा रखते हुये मेरे लिये कहिये। जिस के यथा योग्य अनुष्ठान से स्वर्ग के अधिकारी जन अमरत्व को सेवन करते

हैं। यही दूसरे वर से मांगता हूं ॥ १३ ॥

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकतः प्रजानन्। अनंतलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥

हे नचिकेता! स्वर्ग के साधन भूत अग्नि को जानता हुआ तेरे लिए उस को मैं कहता हूं मेरे वचन को सुन वा जान तत्पश्चात् इस को विविध स्थानों में प्राप्त करने वाला जगत् की स्थिति का हेतु बुद्धि में स्थित वा व्याप्त जान ॥ १४ ॥

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा। स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः

उसके लिये सृष्टि की आदि में दर्शन के हेतु अग्नि का व्याख्यान किया। उस अग्नि से सिद्ध होने वाले यज्ञादि में जो वा जितनी जिस प्रकार से ईंट चिननी चाहियें यह सब वर्णन किया। उसने भी जिस प्रकार कहा था। उस को प्रत्यक्ष अनुवाद करके सुनाया। इस के अनन्तर उसके ऊपर वह प्रसन्न होता हुवा फिर भी बोला ॥ १५ ॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः। तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कांचेमामनेकरूपां गृहाण ॥

उच्च भाव से भावित मृत्यु प्रसन्न होकर उस से बोला कि फिर भी इस दूसरे वर के प्रसंग में तेरे लिये इस समय वर को देता हूं। यह विधान किया हुवा अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगा और इस चित्र विचित्र माला को स्वीकार कर ॥ १६ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य संधिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्म मृत्यू। ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥

नचिकेता के प्रति जिसका विधान किया वह नाचिकेत अग्नि कहाता है। उस को जो तीन बार चयन करे वह पुरुष तीन से सम्बन्ध को प्राप्त होकर वह तीन कर्म करने वाला जन्म मरण से पार हो जाता है। वेद रूप ब्रह्म जज्ञ को धारण करने वाले स्तुति के योग्य देव को जान कर और निश्चय करके अतिशय शान्ति को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥

मनुष्य के मरने पर यह आत्मा है ऐसा कोई मानते हैं। और नहीं है ऐसा अनेक लोक मानते हैं। इस प्रकर जो यह सन्देह है सो आप से उपदेश पाया हुवा मैं इसको जानूँगा वरों में यह तीसरा वर है॥

अथ द्वितीयावल्ली

श्रवणायापि बहुभिर्यो नलभ्यः, शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ ७ ॥

जो परमात्मा बहुतों को सुनने के लिए भी नहीं मिलता सुनते हुए भी अनेक जन जिस को नहीं जानते। इस परमात्मा का प्रवचन करने वाला कोई विरला ही होता है इसका पाने वाला कोई बड़ा विवेक शील ही होता है। विवेकी पुरुष से उपदेश हुवा जानने वाला कोई ही होता है ॥ ७ ॥

नैषातर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव-सुज्ञानाय प्रेष्ठ । यां त्वमापः सत्यधृति-र्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रेष्टा ।

हे प्रेष्ठ ! यह आत्म प्रमृता बुद्धि सुबुद्ध स्वरूप ज्ञान हेतु तर्क से नहीं बिगड़नी चाहिए । गुरु से ही उपदेश की हुई बुद्धि सम्यक् ज्ञान के लिए होती है । तू निश्चल धैर्य वाला है तू जिस बुद्धि को प्राप्त हुआ है हे नचिकेता ! तेरे समान ही हम से पूछने वाला हो ॥ ६ ॥

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् । अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥

विद्वान बाह्य विषयों से चित्त वृत्ति को हटा कर आत्मा में लगाने से उस दुःख से जानने योग्य गुप्त, अन्तःकरण में भी व्याप्त, जीवात्मा में स्थित, दुर्गम होने से त्रिस्मस्थ सनातन देव को मानकर सुख दुःख को त्याग देता है ॥ १२ ॥

अन्यत्र धर्मादन्यत्राऽधर्मादन्यत्रास्मात्कृताऽकृतात् । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

कर्तव्य रूप आचरण से पृथक् अकर्तव्य से अलग इस कार्य और कारण से भिन्न, भूत काल से, भविष्यत् से वर्तमान से भी अतिरिक्त जिसको देखते हो उसको कहो ॥ १४ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि-सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्म-चर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्यो-मित्येतत् ॥ १५ ॥

सब वेद जिस पदका बारम्बार वर्णन करते हैं सारे तप और नियमादि भी जिस का कथन करते हैं । जिस पद की इच्छा करते हुये ब्रह्मचर्याश्रम का आचरण करते हैं उस पद को तेरे लिये संक्षेप से 'ओं' है यह कहता हूं ॥ १५ ॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥

यह 'ओं' ही नाश न होने वाला ब्रह्म है यही सब से उत्तम अक्षर है इस ही अक्षर को जान कर जो जिस अर्थ को चाहता है उसको वह अर्थ अवश्य ही प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते

यदि मारने को मारने वाला मानता है, तथा मारा हुआ आत्मा को मरा हुआ मानता है तो वे दोनों कुछ नहीं जानते । यह आत्मा किसी को नहीं मारता और न किसी से मारा जाता है ॥ १९ ॥

अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मास्य जन्तोर्निहितोगुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः

आत्मा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म है बड़े आकाशादि से भी बड़ा है, वह इस प्राणि की बुद्धि में स्थित है उस आत्मा की महिमा बुद्धि के विमल होने से कामना रहित विगत शोक प्राणि देखता है ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥

यह आत्मा उपदेश से प्राप्त नहीं होता, बुद्धी से नहीं मिलता बहुत सुनने से भी नहीं जाना जाता। जीवात्मा जिस आत्मा को ही स्वीकार करता है उससे प्राप्त होने योग्य है यह आत्मा उस के लिये अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकाश करता है॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥

जिस ब्रह्म के ब्राह्मण और क्षत्रिय भी दोनों भक्ष होते हैं जिस का उपसेचन मृत्यु है वह परमात्मा जिस दशा में जैसा है इस प्रकार कौन जान सकता है॥ २५॥

अथ तृतिया वल्ली।

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमेपरार्द्धे। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥ १॥

सब से उत्तम हृदयाकाश में तथा बुद्धि में स्थित शरीर में अपने किये हुए कर्मों के फल को भोगते हुए अन्धकार, और प्रकाश के तुल्य ब्रह्म के जानने वाले कहते हैं। और जो तीन बार जिन्होंने नाचिकेत अग्नि का सेवन किया ऐसे कर्मकाण्डी पंच यज्ञों के करने वाले गृहस्थ भी ऐसाही कहते हैं।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि

जो यज्ञशीलों का पुल के समान है उस नाचिकेत अग्नि को हम जान सक्ते हैं और जो भवसिन्धु के पार तरने की इच्छा करने वालों का भय रहित साधन है उस सब से उत्कृष्ट नाश रहित परमात्मा को भी जान सकते हैं।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

आत्मा को रथि जाने, और शरीर को ही रथ जाने और बुद्धि को सारथी जान और मन को ही लगाम जान॥ ३॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

इन्द्रियों को घोड़े कहते हैं इन इन्द्रियों में शब्द स्पर्शादि को मार्ग कहते हैं। पण्डित लोग शरीर इन्द्रिय और मन से युक्त आत्मा को भोगने वाला ऐसा कहते हैं॥ ४॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥

जो विषयों में लम्पट मनुष्य अनवस्थित मन से सर्वदा युक्त होता है उस की इन्द्रियाँ सारथी के दुष्ट घोड़ों के समान वश में नहीं होती॥ ५॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ ६॥

और जो विवेक सम्पन्न समाहित मन से सर्वदा युक्त होता है उसके चक्षु आदि सारथि के शिक्षित घोड़ों के समान वश में होते हैं॥ ६॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति

जो विवेक रहित मन के पीछे चलने वाला

सदा पवित्र होता है वह उस शान्त पद को नहीं प्राप्त होता किन्तु जन्म मरण के प्रवाह को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ ८ ॥

और जो विवेक सम्पन्न मन को जीतने वाला निरन्तर शुद्ध भाव युक्त होता है वह तो उस आनन्द पद को प्राप्त होता है जिससे फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ ८ ॥

भजन

दीनके दयाल भरोसा म्हाने थारा जी ॥
धना भगत नें हलियल जोड़ा,
लेकल बीज उधारा ।
रस्ता में दो साधू मिलगये,
बीज तो दान दिया उनको तो सारा जी ॥
चुग २ कंकरी झोली भरदई,
खेत बो दिया सारा जी ।
राम २ के जैये लगाये तुमही तो,
करियो मेरे कुटुम का गुजारा जी ॥
कड़ २ बड़ २ तिरिया करती,
हो रहा लाचारा जी ।
औरों के निपजे मोठ बाजरा,
म्हारा तो तुम्बा अन्त न पारा जी ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हर चरणन चित धारा जी ।
हरी तो रहेंगे म्हारे आप रखवाला जी ॥ ४ ॥

२

तू तो राधे कृष्ण बोल तेरा क्या लगेगा मोल ॥
इस काया के पांच बछेरे यह पांचों फिरें लुटेरे ।
पांचों की बाग मोड़ ॥ १ ॥
तेरे हाथ पैर हलते दस पांच कोस नहीं चलते ।
तू दिल की घुण्डी खोल ॥ २ ॥
माया देख भरमाया या माया है जग ठगनी ।
ठगनी की संगत छोड़ ॥ ३ ॥
बार २ सुखदेव बतावे ऐसा दाव फेर नहीं पावे ।
भजले राम सुकृत करले चौरासी ने छोड़ ॥ ४ ॥

३

भारत में फिर से आजा गिरधर के उठाने वाले ॥
सोतों को फिर से जगा जा गीता के गाने वाले ॥
गूंजा था जिससे मधुबन नाचा था जिससे त्रिभुवन ।
वोह तान फिर से सुना जा बंसी बजाने वाले ॥
दुख द्वन्द पड़ रहे हैं दुष्कर्म हो रहे हैं ।
फिर कष्ट सब मिटाजा गौयें चराने वाले ॥
है राधेश्याम निर्बल जन तेरे भक्त वत्सल ।
बिगड़ी को फिर बना जा बिगड़ी बनाने वाले ॥

४

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो ॥
आप दुखित पर दुखित जान जिय चातक नाम तिहारो
बासर रैन नाम ले बोलत भयो बिरह ज्वर कारो ॥
जे तन लागे सोई तन जाने प्रेम बान अनियारो ।
देखो सकल निवास सखी जिय बिछुरन को दुःख न्यारो
सूरदास प्रभु स्वाति बूंद लगि तज्यो सिंधु जलखारो

५

हरि को मारग नित प्रति जोवति ॥
चितवती रहती चकोर चन्द्रज्यों ।
सुमर २ गुण रोवति ॥
पतियां पठवत मसि नहिं खंडित ।
मानो लिख २ धोवति ॥

भूख न दिन निशि नींन्द हिरानी।
एको पल नहिं सोवति ॥
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरश बिन।
वृथा दिवस हम खोवति ॥

६

बिन गोपाल बैरिन भई कुँजे ॥
तब वे लता लगत अति शीतल।
अब भई विषम ज्वाल की कुञ्जें ॥
वृथा बहत यमुना खग बोलत।
वृथा कमल फूलत अलि गुञ्जें ॥
सूरदास प्रभु को मुख जोवति।
अखियां भई अरुण ज्यों गुञ्जें ॥

७

हम विरही बिरही म्हारो देश ॥
विरही को हम राग अलाप्यो विरही म्हारो वेश ॥
मन बिरही तन विरही धन जन बिरही सुख सन्देश ॥
खान पान दिन रैन बिरही अब बिरही रह्यो अन्देश ॥
वृज श्याम के बिरह फांस में प्राण बन्धे ज्यों वेश ॥

८

रे निरमोही छवि दिखलाजा।
कान चातकी श्याम बिरह घन।
मुरली मधुर सुना जा ॥
ललित किशोरी नयन चकोरन।
दुति मुख चन्द्र दिखाजा ॥
भयो चहत यह प्राण बटोही।
रुठे पथिक मनाजा ॥

९

श्याम घनश्याम तुम्हें जड़ जंगम में देख रहे हैं।
आमयनी के पती भयानक होकर भी तुम दिखाये हो
चतुर जनों के तुम हो चतुर्भुज मूर्खों को चोपाये हो
ना कोई बन्धन ना कोई रहसो निगुण यों ही कहलाते हो
कारी कामर ओढ़त बन में गायें चराने जाते हो ॥
कारे २ नन्द दुलारे कहते सालिग राम तुम्हें ॥
लाखों नाम रूप के धारे लाखों बार प्रणाम तुम्हें ॥

१०

जय २ प्रभू जगत देव विश्व के बिहारी ॥
जपत तपत तिहारो नाम पूरण होत सकल काम।
मिलत हैं तिहारो धाम सकल कष्ट हारी ॥ १ ॥
भक्तन को देखि प्रीति धीरज हो हुए अधीर।
सौंपे आज यही हैं मोर शरण हूं तिहारी ॥ २ ॥

११

जो सुख होत गोपालहि गाये ॥ टेक ॥
सो नहिं होत जप तप के कीने।
कोटिक तीरथ न्हाये ॥ १ ॥
दिये लेत नहिं चारि पदारथ।
चरण कमल चित लाये ॥ २ ॥
तीन लोक तृण सम करि लेखत।
नन्दनन्दन उर आये ॥ ३ ॥
बंशी बट वृन्दावन यमुना।
तज बैकुण्ठ को जाये ॥ ४ ॥
सूरदास हरि को सुमिरन करि।
बहुरि न भवजल आये ॥ ५ ॥

१२

हमारे धन जीवन कृष्ण मुकुन्द ॥ टेक ॥
परम उदार कृपानिधि कोमल,
पूरण परमानन्द ॥ १ ॥
निठुर बचन सुनि फटतु हियो यों,
रहुरे अलि मतिमंद ॥ २ ॥
व्रज युवतिन को सुगम जनावति।
योग युक्त सुख द्वन्द ॥ २ ॥
यदि तो जाइ उन्हैं उपदेसो।
सनकादिक स्वच्छन्द ॥ ३ ॥
वारक हमें दरश दिखरावो।
सूरश्याम नन्द नन्द ॥ ४ ॥